# विराट ब्रह्म की झरोखे से झाँकी

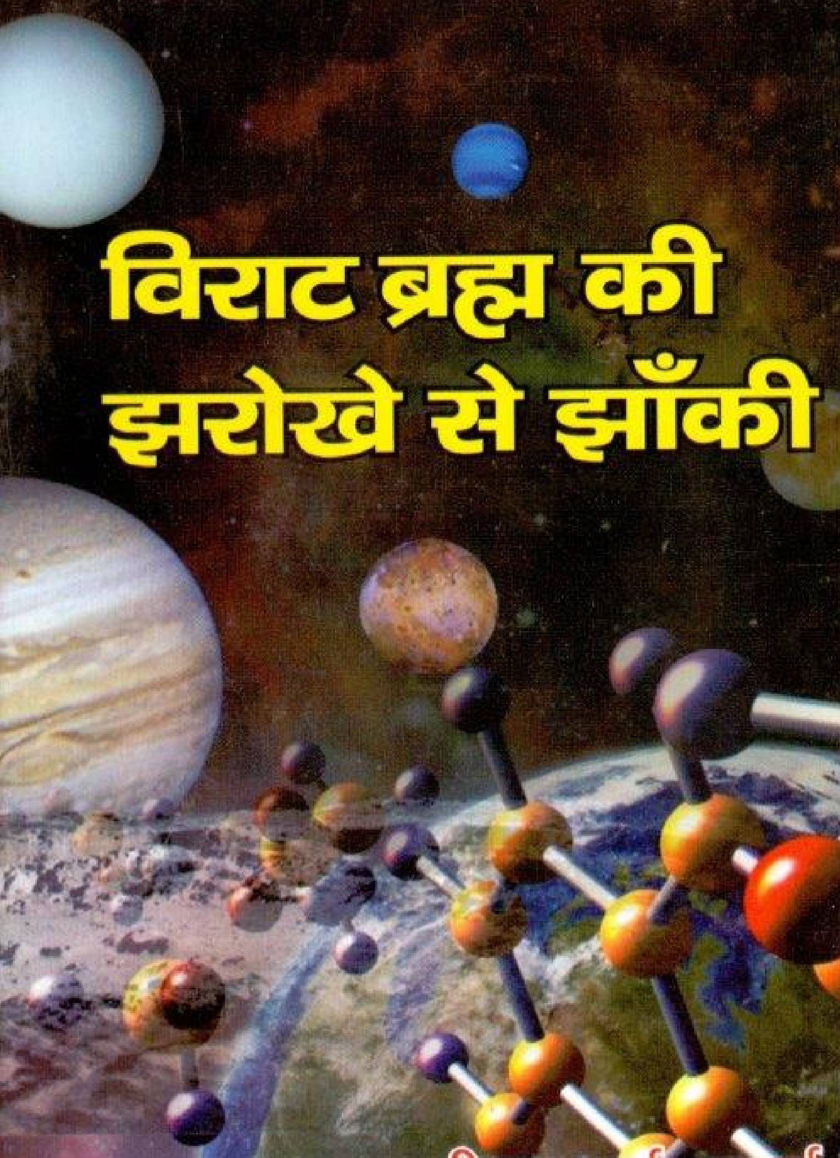

–श्रीराम शर्मा आचार्य

# विराट ब्रह्म की झरोखे से झाँकी

लेखक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
डॉ० प्रणव पण्ड्या

प्रकाशक
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा—२८१००३
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो० ०९९२७०८६२८९, ०९९२७०८६२८७
फैक्स : २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : १९.०० रुपये

प्रकाशक
**युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट**
**गायत्री तपोभूमि**
मथुरा (उ० प्र०)

लेखक
**पं० श्रीराम शर्मा आचार्य**
**डॉ० प्रणव पण्ड्या**

मुद्रक
**युग निर्माण योजना प्रेस**
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

# विषय सूची


| अध्याय | पृष्ठ सं. |
|---|---|
| ✱ अणुशक्ति से भी अधिक सामर्थ्यवान—आत्मशक्ति | ४ |
| ✱ ब्राह्मी चेतना का विराट महासागर और हम उसके एक घटक | ३० |
| ✱ मानवीय तेजोवलय एवं छायापुरुष | ४५ |
| ✱ मानवीय काया में समाया वैभव साम्राज्य | ६६ |
| ✱ रहस्यमय, अद्भुत हैं—सूक्ष्म के क्रिया-कलाप | ८६ |


✧✧

*विचारवान वह है, जो अपने अवगुणों और दूसरों के गुणों को याद रखता है और कोई वचन बिना समझे मुख से नहीं निकालता।*

# अणुशक्ति से भी अधिक सामर्थ्यवान—आत्मशक्ति

विश्व का कण-कण शक्ति से भरा पड़ा है। पर दुर्भाग्यवश हम उसके अभाव में पग-पग पर अभाव और कष्ट अनुभव कर रहे हैं। अणु की शक्ति का क्या ठिकाना, सूर्य तो शक्ति का स्रोत ही है। गामा किरणें, कास्मिक किरणें, रेडियो किरणें, एक्स किरणें प्रभृति कितनी ही शक्तिधाराएँ लोक-लोकांतरों से इस पृथ्वी पर आती रहती हैं, उनका एक बहुत छोटा अंश प्रयुक्त होता है, शेष ऐसे ही अस्त-व्यस्त होकर विनष्ट हो जाता है।

शक्तिशाली बनने के लिए हमें दो कदम उठाने पड़ेंगे—एक, आस-पास बिखरी हुई शक्ति का संचय; दूसरे उसका सदुपयोग। संचय कर सकने की क्षमता न होने से घोर जल वर्षा होते रहने पर भी एक बूँद पानी नहीं मिलता और हाथ मलते रह जाते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत वस्तुओं का यदि सुदपयोग न हो सके तो भी लाभदायक स्थिति प्राप्त करने से वंचित ही रहना पड़ता है। यदि शक्ति की व्यापकता और प्रचुर मात्रा में उपस्थिति से परिचित होने के साथ-साथ उसका संग्रह और सदुपयोग विधान भी समझ में आ जाए तो समझना चाहिए कि हम सर्वशक्तिमान न सही अतीव शक्तिशाली अवश्य ही बन सकते हैं और आज की दयनीय स्थिति से कहीं आगे बढ़ सकते हैं।

अणु के स्वरूप, बल तथा बाहुल्य पर दृष्टिपात करें तो आश्चर्य होता है कि अपने अति समीप अतिशय शक्ति भंडार प्रस्तुत है, किंतु उससे लाभ उठाते नहीं बन पड़ रहा है। अणुशक्ति की संक्षिप्त जानकारी भी हमें आश्चर्य में डाल देती है।

अणु का आकार एक इंच के २० करोड़वें भाग के बराबर होता है। अब तक बने सूक्ष्मदर्शक यंत्रों में से कोई भी अणु को अकेला नहीं देख सकता। उसे तोलने को कोई तराजू भी नहीं बनी है। फिर भी गणित के आधार पर उसकी नाप-तौल, आकृति-प्रकृति आदि का बहुत कुछ वर्णन जान लिया गया है। परमाणु को एक ब्रह्मांड कह सकते हैं। उसके भीतर ग्रह-नक्षत्र हैं और आकाश भी। बीचोंबीच प्रोटोन और न्यूट्रान से बना एक केंद्रक है। बाकी खाली मैदान पड़ा है जिसमें इलेक्ट्रान चक्कर लगाते हैं। केंद्रक को यदि एक गेंद के बराबर मान लिया जाए तो पूरे परमाणु कलेवर को २००० फुट व्यास का मानना पड़ेगा। भ्रमणशील इलेक्ट्रानों का भार न्यूट्रान या प्रोट्रान की अपेक्षा १८५० अंश ही होता है। सभी परमाणुओं में इन उप-अणुओं की संख्या समान नहीं होती। किसी तत्त्व में वे कम होते हैं और किसी में अधिक।

भूतकाल में यह मान्यता थी कि यह समस्त संसार पाँच तत्त्वों से मिलकर बना है। उन पाँच तत्त्वों के नाम पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश माने जाते थे। पर ज्ञान के अभिवर्द्धन के साथ उपरोक्त मान्यता को झुठला दिया है। नए प्रतिपादन यह बताते हैं कि पूर्व मान्यता वाले तथाकथित पंचतत्त्व, मौलिक तत्त्व नहीं हैं। वे एक प्रकार से सम्मिश्रण हैं। जल कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं। वह कुछ गैसों का सम्मिश्रण है। यही बात शेष चारों तत्त्वों के संबंध में कही गई है।

मौलिक तत्त्वों के शोध प्रयास में परमाणु को अविभाज्य तत्त्व की मान्यता मिली हुई थी, पर पीछे उसे भी एक सम्मिश्रण सिद्ध कर दिया गया। विज्ञानी प्राउट ने उसे धनावेश और ऋणावेश दो घटकों में विभक्त बताया। धनावेश को प्रोटोन नाम दिया गया और ऋणावेश

को इलेक्ट्रोन। पीछे क्यूरी दंपती ने परमाणु में एक और तत्त्व की खोज की जिसे न्यूट्रान नाम दिया गया, इसे आवेशरहित बताया गया। सी० डी० टण्डरसन ने इलेक्ट्रान के समतुल्य किंतु आवेश में विपरीत स्थिति के एक और नए कण की खोज की, उसका नाम पाजीट्रान पड़ा। जापानी वैज्ञानिक युकावा ने उसी परमाणु परिवार के मेसान कणों की खोज की; इन्हें पाई-मेसान, के-मेसान, क्यू-मेसान नाम दिया गया है।

परमाणु के उपरोक्त अंग-प्रत्यंगों में भी अब भेद-उपभेद निकलते चले आ रहे हैं। हाइपेरान परिवार के लेक्वडा कण, ऐन्टा हाइपेरान, सिग्मा केस्केड, फोटान, न्यूट्रिनो आदि परमाणु के उपभेद इन दिनों विशेष शोध के विषय बने हुए हैं। इन मौलिक तत्त्वों के अतिरिक्त लगभग वैसी ही विशेषताओं से युक्त नए तत्त्व-कणों का कृत्रिम सम्मिश्रण तैयार किया जा रहा है। इन सब एटामिक कणों की आकृति और प्रकृति में अति आश्चर्यजनक नवीनताएँ प्रकट होती चली जा रही हैं।

भावी शक्ति-स्रोत के लिए इन दिनों परमाणु शक्ति पर निगाह लगी हुई है और उसका सुलभ उपयोग तलाश किया जा रहा है। आश्चर्य है कि परमाणु जैसी नगण्य इकाई, तुच्छ सी वस्तु किस प्रकार शक्ति का प्रचंड स्रोत बनकर मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका संपादित कर सकेगी?

परमाणु में शक्ति उत्पन्न करने का क्रिया-कलाप है—अणु-विखंडन। इसके लिए मूलतः यूरेनियम का प्रयोग किया जाता है। उस पर न्यूट्राणुओं का आघात करने से आसानी से टूट जाता है। उपलब्ध यूरेनियम का सर्वांश विखंडन के योग्य नहीं होता। उसमें ०.७१ प्रतिशत ही विखंडनीय अंश है शेष तो अन्य वस्तुएँ ही उसमें

मिली हुईं हैं, जिन्हें उर्वर कहा जा सकता है। प्रयत्न यह हो रहा है कि इस उर्वर अंश को भी विखंडन से सहायता देने योग्य बनाया जाए। वैज्ञानिकों की भाषा में शुद्ध अंश को यूरेनियम-२२५ और अशुद्ध अंश को-२३८ कहा जाता है। इस २३८ अंश पर न्यूट्राणुओं का आघात करके उसे भी एक नए पदार्थ प्लूटोनियम-२३९ में परिणत कर लिया जाता है। इस प्रकार लगभग यह सारा ही मसाला घुमा-फिराकर परमाणु शक्ति उत्पन्न करने में प्रयुक्त हो सकने योग्य बना लिया जाता है।

एक घन फुट यूरेनियम से इतनी शक्ति उत्पन्न की जा सकती है जितनी कि १७ लाख टन कोयले में अथवा ७२ लाख वैरल तेल में होती है। इसे ३२० खरब घनफुट प्राकृतिक गैस के बराबर भी समझा जा सकता है।

अणुशक्ति का न केवल बिजली उत्पन्न करने में उपयोग है वरन कैन्सर सरीखे जटिल रोगों की चिकित्सा में भी उसे प्रयुक्त किया जाता है। बंबई (मुंबई) के टाटा संस्थान अंगरेजी ने इस दिशा में बहुत प्रगति की है।

परमाणु को अंगरेजी में एटम कहते हैं। यह मूलतः ग्रीक भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है अविभाज्य; ग्रीक में ही क्यों सर्वत्र यही मान्यता थी। अणु को पदार्थ की सबसे छोटी इकाई माना जाता था, पर अब वह लगभग ३० इकाइयों का एक प्रकार का राष्ट्रमंडल है। एक ३० ग्रह-नक्षत्रों वाला परिभ्रमणशील सौर परिवार भी कहा जा सकता है।

अणु बम, पनडुब्बियों के संचालन, बरफ तोड़ने आदि में उसका प्रयोग काफी दिनों से चल रहा है। अतः ग्रह-नक्षत्रों में यात्रा करने वाले राकेटों में अणुशक्ति का भारी योगदान है। आगे तो वह

सर्वसाधारण की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सर्वसुलभ ही बनने जा रही है।

यूरेनियम में अग्नि और रेडियम सक्रियता के दोनों गुण हैं। इसलिए उसके निर्माण एवं उपयोग में पूरी-पूरी सावधानी बरतनी पड़ती है। तनिक सी असावधानी से भयंकर अग्निकांड हो सकता है और रेडियो सक्रियता फैल पड़े तो महा विनाश उत्पन्न कर सकती है। जहाँ यह प्रयोग होते हैं, वहाँ ऐसे विशिष्ट उपकरण लगाए जाते हैं जिनसे हवा में यूरेनियम के धूलि-कण जमा न होने पाएँ।

वैज्ञानिकों की भाषा में अणुशक्ति की तरह ही मनुष्य की चेतना शक्ति है जिसके अंतर्गत मन, बुद्धि, चित्त, आत्मबोध को अंतःकरण के रूप में जाना जा सकता है। आत्मिकी के अनुसार लगन, तत्परता, एकाग्रता, तन्मयता, निष्ठा, दृढ़ता, हिम्मत जैसे मानसिक गुण ऐसे हैं, जिनके आधार पर अणुशक्ति से भी करोड़ों गुनी अधिक प्रखर आत्मिक शक्ति को जगाया, बढ़ाया, रोका, सँभाला एवं सुनियोजित किया जा सकता है।

अणु विज्ञान से बढ़कर आत्मविज्ञान है। जड़ अणु में जब इतनी शक्ति विद्यमान है तो जड़ की तुलना में चेतन का जो अनुपात है, उसी हिसाब से आत्मशक्ति की महत्ता होनी चाहिए। अणुविज्ञानी अपनी उपलब्धियों पर गर्वान्वित हैं और उस सामर्थ्य को युद्धास्त्रों से लेकर बिजली की कमी को पूरा करने जैसी योजनाओं में प्रयुक्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। आत्मविज्ञानियों का कर्त्तव्य है कि वे उसी लगन और तत्परता के साथ आत्मशक्ति की महत्ता और उपयोगिता को इस प्रकार प्रमाणित करें कि सर्वसाधारण को उसकी गरिमा समझ सकना संभव हो सके।

महामानव वस्तुतः एक जीवंत प्रयोग-परीक्षण है, जिन्हें आत्म-शक्ति का संग्रह और सदुपयोग कर सकना आया तथा उस प्रयोग के द्वारा प्रगति-पथ पर बढ़ चलने का लाभ उठाया। ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति की त्रिवेणी को केंद्रित कर उससे उत्पन्न सामर्थ्य को रचनात्मक दिशा में प्रयुक्त कर सकने की विधि-व्यवस्था को ही अध्यात्म कहते हैं।

## सूक्ष्म में छिपा असीम ऊर्जा भंडार

भौतिकी का सूक्ष्म शक्ति-सामर्थ्य का सिद्धांत यह बताता है कि यदि एक ग्राम पदार्थ को वास्तविक शक्ति में बदला जा सके, तो उससे जो ताप उत्पन्न होगा, वह प्रकाश की गति का गुणनफल अर्थात $३ \times १०^{१०} \times ३ \times १०^{१०} = ९ \times १०^{२०}$ अर्ग ऊर्जा के समतुल्य होगा। यह ऊर्जा २१४०० अरब कैलोरी गरमी उत्पन्न कर सकेगी। एक कैलोरी का अर्थ है एक ग्राम पानी को एक डिगरी सेंटीग्रेड गर्म कर देना। आइन्सटीन के इस सिद्धांत के अनुसार एक परमाणु के भौतिक द्रव्य में ही इतनी प्रचंड गरमी होती है कि उससे २ लाख १४ हजार टन पानी को १०० डिगरी सेंटीग्रेड खौलाया जा सकता है। एक पौंड स्थूल पदार्थ की शक्ति १४ लाख टन कोयला जलाने के बराबर होती है एवं इससे अमेरिका जैसे विशाल राष्ट्र को एक माह तक विद्युत सप्लाई दी जा सकती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि मानवीय काया के अणु इतने सामर्थ्यवान हैं कि ६० किलोग्राम वजनी शरीर वाले व्यक्ति की भौतिक ऊर्जा को परिवर्द्धित कर एशिया महाद्वीप को ८ वर्ष तक लगातार विद्युत सप्लाई की जा सकती है।

डॉ० विकी नामक प्रसिद्ध खगोलज्ञ से एक बार एक पत्रकार ने प्रश्न किया—क्या आप बता सकते हैं अति सूक्ष्म से अति विशाल कितना बड़ा है? डॉ० विकी ने खड़िया उठाई और एक बोर्ड में

लिखा १००००००००,०००००,०००००,०००००,०००००,०००००, ०००००,०००० (१० से आगे ४१ शून्य) गुना। जबकि यह मात्र अनुमान है। सत्य में विराट जगत कितना विराट है, उसकी कोई माप नहीं है।

अध्यात्म सूक्ष्मता का विज्ञान है। उसमें पदार्थ के विस्तार को नहीं, गुणों की तेजस्विता को महत्त्व दिया गया है। आंतरिक उत्कृष्टताएँ आँखों से दृष्टिगोचर नहीं होतीं तो भी उनका प्रभाव कितना अधिक होता है, इसे सहज ही जाना जा सकता है। विचारवान इसीलिए विस्तार की अपेक्षा सूक्ष्मताजन्य प्रखरता को ही महत्त्व देते हैं।

वैज्ञानिकों का कथन है कि अणु इतना सूक्ष्म है कि उसकी सूक्ष्मता का सही माप कठिन है। परमाणु के नाभिक का व्यास .००००००००००००००१ मिलीमीटर होता है। इस नगण्य जैसी स्थिति को आँखें तो इलेक्ट्रानिक सूक्ष्मदर्शी से भी कठिनाई से ही देख पाती हैं। दोनों परिस्थितियाँ देखते ही ऋषियों को "**अणोरणीयान महतोमहीयान**" अर्थात "वह अणु से अणु और विराट से भी विराट है" वाला पद याद आता है।

"मनुष्य इन दोनों के मध्य का एक अन्य विलक्षण आश्चर्य है" यह कहने पर डॉ० विकी से प्रश्नकर्त्ता ने पूछा, सो क्यों? उसका उत्तर देते हुए उन्होंने बताया, "मनुष्य जिन छोटे-छोटे कोशों से बना है। उसकी संख्या भी ऐसी ही कल्पनातीत है अर्थात ७००००००००० ०००००००००००० । इसमें आश्चर्य यह है कि इन सभी अणुओं में प्रकाशमान नाभिक की संगति आकाश के एक-एक तारे से जोड़े, तो यह देखकर आश्चर्य होगा कि समस्त ब्रह्मांड इस शरीर में ही बसा हुआ है।" डॉ० विकी के इस कथन "जो कुछ

ब्रह्मांड में है वह सब मनुष्य देह में है।" इस सिद्धांत में कितना साम्य है, सहज ही देखा जा सकता है।

वजन की दृष्टि से कौन वस्तु भारी और कौन हलकी है, इस आधार पर उसकी गरिमा का मूल्यांकन नहीं हो सकता। चट्टान बहुत भारी है, किंतु उसका मूल्य हीरे के एक छोटे से टुकड़े के बराबर नहीं होता। सबसे हलका हाइड्रोजन अणु, अन्य भारी समझे जाने वाले अणुओं की तुलना में कम नहीं, अधिक ही महत्त्व प्राप्त करता है। इसे भारी जल के माध्यम से समझा जा सकता है। यही नहीं, हाइड्रोजन परमाणु का एक इलेक्ट्रोन अपने केंद्र के चारों ओर एक सेकंड में ६००० खरब चक्कर काटता है। परमाणु की संरचना सौरमंडल के सदृश है। उनके भीतर विद्युत कण भयंकर गति से घूमते हैं, फिर भी उसके पेट में बड़ा सा आकाश भरा रहता है। परमाणुओं के गर्भ में चल रही भ्रमणशीलता के कारण ही इस संसार में विभिन्न हलचलें हो रही हैं। यदि वे सब रुक जाएँ तो आधा इंच धातु का वजन तीस लाख टन हो जाएगा और सर्वत्र अकल्पनीय भारभरी जड़ता दिखाई पड़ेगी।

वस्तुतः परमाणु एक सजीव ब्रह्मांड है, उसमें झाँककर देखा जाए तो सूर्य सी दमक, सितारों सा परिभ्रमण और आकाश जैसा शून्य स्थान मिलता है। परमाणु की सारी गति का केंद्रबिंदु उसका तेजस्वी नाभिक ही होता है। परमाणु के वास्तविक स्वरूप को देखना हो तो अपनी आँख और बुद्धि को १ इंच के २० करोड़वें भाग से भी अधिक सूक्ष्म करना पड़ेगा। यदि किसी शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी से देखा जाए तो इस परमाणु के भीतर भी एक व्यवस्थित सृष्टि मिल जाती है। यह आश्चर्य की बात है कि परमाणु भी पोला होता है। उसके बीचोबीच केंद्रक और नाभिक के अतिरिक्त शेष

भाग खाली पड़ा रहता है। केंद्रक और खाली पड़े स्थान की अलग-अलग माप करनी हो तो सापेक्ष गणना करनी पड़ेगी। यदि न्यूक्लियस या केंद्रक को गेंद के बराबर मान लें तो परमाणु का शून्य-आकाश २००० फीट व्यास के घेरे जितना अर्थात १०' × २०' साइज के १० बड़े कमरों के बराबर होगा।

परमाणु कितना लघुतम एवं संरचना की दृष्टि से कितने विराट की अनुकृति होता है? यह समझना हो तो कोई न कोई सापेक्ष सिद्धांत ही अपनाना पड़ेगा। उदाहरण के लिए एक काँच के गिलास में भरे पानी के परमाणुओं को यदि बालू के कण के बराबर मान लिया जाए तो गिलास की समस्त बालू अटलांटिक महासागर में डाल देने से वह पटकर एक खेल का लंबा-चौड़ा मैदान बन जाएगा। परमाणु पदार्थ की अत्यंत लघुतम इकाई है। यदि २५ करोड़ परमाणुओं को २५ करोड़ सैनिकों की एक हथियार बंद सेना मानकर उन्हें एक पंक्ति में फालेन होने का आदेश दिया जाए, तो उनके लिए एक इंच भूमि पर्याप्त है। यह अंश भार में इतना क्षुद्र होता है कि हाइड्रोजन के एक परमाणु का भार कुल १००००००००००००००००००००० ०००००० ग्राम से भी कम होगा, किंतु इनकी शक्ति बहुत अधिक होती है, जिसकी कल्पना करना भी कठिन है।

रेडियम धातु के द्वारा उत्पन्न होने वाले विकरण की खोज होने तक यही मान्यता थी कि पदार्थ को ऊर्जा में नहीं बदला जा सकता है। दोनों का अस्तित्व स्वतंत्र है। पर अब अणु विस्फोट के पश्चात यह स्वीकार कर लिया गया है कि पदार्थ और ऊर्जा वस्तुतः एक ही सत्ता के दो रूप हैं और उन्हें आपस में बदला जा सकता है।

नाभिक को तोड़ने से प्रचंड ऊर्जा प्राप्त होती है। इसके लिए कणों को अतिरिक्त ऊर्जा देनी पड़ती है। इसके लिए

बहुमूल्य संयंत्र बनाए गए हैं, जिन्हें साइक्लोट्रोन कहते हैं। अमेरिका के ब्रुक हेवन क्षेत्र में बने संयंत्र में ३० अरब इलेक्ट्रोन वोल्ट की क्षमता है। रूस के डुबना क्षेत्र में बने संयंत्र में इससे भी ढाई गुनी अधिक क्षमता है।

आइन्स्टीन के द्वारा प्रादुर्भूत शक्ति महासूत्रों के आधार पर यदि कुछ पौंड पदार्थ को पूर्णतया शक्ति रूप में बदला जाए तो उससे इतनी ऊर्जा प्राप्त होगी जितनी १४००००० टन कोयला जलाने से मिल सकती है। इसमें २५ हजार अश्वशक्ति का कोई इंजन कई सप्ताह सतत कार्य करता रह सकता है।

यूरेनियम की खोज के बाद यह समस्या भी अब हल हो गई है। कोयले की कमी से ऊर्जा समस्या को लगभग मुक्ति मिल गई है। अब मात्र ९ पौंड यूरेनियम से उतनी ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है जितनी कि १५०००० टन कोयले से प्राप्त होती है। शांतिपूर्ण प्रयोगों के लिए अब वैज्ञानिकों के द्वारा अणुशक्ति उत्पादन में यूरेनियम धातु का उपयोग प्रधान रूप से होता है, पर आगे चलकर उसका स्थान थोरियम ले लेगा। यूरेनियम की कमी है, पर थोरियम आसानी से और अधिक मात्रा में उपलब्ध किया जा सकेगा।

एक पौंड यूरेनियम २३५ को जब तोड़ा जाता है, तो उससे उतनी ऊर्जा प्राप्त होती है, जितनी २०००० टन टी० एन० टी० के विस्फोट से। यह शक्ति इतनी अधिक होती है कि उससे १०० वाट पावर के दस हजार बल्व पूरे वर्ष दिन-रात जलाए रखे जा सकते हैं। स्ट्रासमान ने सर्वप्रथम इसी शक्ति का उपयोग नागाशाकी और हिरोशिमा को फूँकने में किया था। यह सब शक्ति तो ब्राह्मी चेतना पर आश्रित कणों की शक्ति है। यदि नाभिक को तोड़ना किसी प्रकार संभव हो जाए तो विश्व-प्रलय जैसी शक्ति उत्पन्न की जा

सकती है। इसे आत्मदर्शी योगी जानते हैं। वैज्ञानिक इस तथ्य का समर्थन करते हैं।

यही नहीं अपने आप उगने और कुछ दिन में ही सूख जाने वाली साधारण सी घास, ७०० बीघे मैदान से काट ली जाए और उसकी सारी आणविक ऊर्जा एकत्र कर ली जाए तो उसकी शक्ति २० हजार टन टी० एन० टी० के बराबर अर्थात पूरे एक हाइड्रोजन बम के बराबर होगी। यह चमत्कार सूक्ष्म में निहित उस शक्ति-संपदा का है जो दृश्य रूप में नजर नहीं आती।

सूक्ष्म की ही महत्ता की चर्चा चल रही है तो एक उदाहरण और लें। परमाणु भौतिकी में ऊर्जा की सबसे छोटी इकाई 'इलेक्ट्रोन वोल्ट' मानी जाती है। वह इतनी कम है जितनी किसी वस्तु को बहुत ही हलके हाथ से पेन्सिल की नोंक छुआ देने भर से उत्पन्न होती है। प्राथमिक कण को इतनी ही ऊर्जा युक्त माना गया है। परमाणु का अस्तित्व इतना कम है कि उसे स्वाभाविक स्थिति में नहीं जाना जा सकता। उसका परिचय तभी मिलता है। जब उसे अतिरिक्त ऊर्जा देकर चंचल बनाया जाए। ऐसी चंचलता १००० से १०००० इलेक्ट्रोन वोल्ट को बढ़ाने पर ही हम उन्हें अपने किसी काम में ला सकते हैं। उसका नाभिक विचलित करने के लिए १ लाख से १०० लाख तक इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है।

किसी का वैभव-बड़प्पन देखकर उसकी गरिमा का मूल्यांकन करना अवास्तविक है। गरिमा उत्कृष्टता में छिपी रहती है, क्योंकि सशक्तता उसी के साथ जुड़ी रहती है। सूक्ष्मजगत में प्रवेश करने पर भौतिकता का कलेवर नहीं रहता, पर इससे शक्ति में कोई कमी नहीं आती, वरन वह आवरण का भार हलका हो जाने पर और भी अधिक संपन्न बनती जाती है।

प्रकाश रश्मियों की लंबाई एक इंच के सोलह से तीस लाखवें हिस्से के बराबर होती है। रेडियो पर सुने जाने वाली ध्वनि तरंगों की गति एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील की होती है। वे एक सेकंड में सारी धरती की सात परिक्रमा कर लेती हैं। शब्द और प्रकाश की तरंगों का आकार एवं प्रवाह इतना सूक्ष्म एवं गतिशील है कि उन्हें बिना सूक्ष्म यंत्रों की सहायता के हमारी इंद्रियाँ अनुभव नहीं कर सकतीं है।

सन् १९३१ में फ्रांस के वैज्ञानिक एडमंड बैकरेल की खोजों से पता चला कि कुछ धातुएँ प्रकाश की किरणों के स्पर्श से बिजली की चिनगारियाँ पैदा करती हैं। इस सदी के वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि प्रकाश कण (फोटोन) परमाणु के चारों ओर स्थित इलेक्ट्रोनों (जो बिजली का आधार होते हैं) से टकराकर उन्हें मुक्त कर सकते हैं। इसी आधार पर सन् १९५४ से अमेरिका में सौर-बैटरियों का निर्माण शुरू हुआ। इन्हीं सौर बैटरियों के विकसित रूप के कारण आज अंतरिक्षीय उपग्रह छोड़े जा सके हैं एवं इस ऊर्जा से अपरिमित लाभ मानव समुदाय को दे सकना संभव हुआ है।

प्रकृति के अंतराल में ऐसी अदृश्य, किंतु सामर्थ्यवान किरणों का संसार बिखरा पड़ा है। इन्हीं में से एक लेसर भी है। 'लेसर अंगरेजी के लाइट एंप्लिफिकेशन बाई स्टिम्युलेटेड एमिशन आफ रेडिएशन', से निकाला गया संक्षिप्त नाम है। इसका अर्थ होता है— विश्वव्यापी विकिरण शक्ति को उत्तेजित करके एक बिंदु से प्रकाश किरण के रूप में ढाल देना। आकाश में फैले हुए प्राकृतिक परमाणुओं की शक्ति जो सामान्यत: इधर-उधर, अस्त-व्यस्त और बिखरी हुई होती है, उसे रेडिप्लैटिनम धातु की छड़, हीलियम या क्रिप्टान गैस के माध्यम से प्रवाहित होने को विवश कर दिया जाता है, जिससे

अनंत आकाश में भरी परमाणु शक्ति काम करने लगे। जो लोग परमाणु की इस शक्ति से परिचित हैं, वे अनुमान लगा सकते हैं कि इन लाखों परमाणुओं का उपयोग करने वाले यंत्र की क्षमता कितनी अधिक भयंकर और वीभत्स होगी। आज से साठ वर्ष पूर्व मात्र प्रयोगशालीय परीक्षणों तक सीमित रहने वाली लेसर संबंधी जानकारी वर्तमान में विकसित अवस्था में पहुँचकर वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति का पर्याय बन चुकी है। कुछ ही दिनों में मात्र अमेरिका जैसे विकसित देशों के ही नहीं बल्कि विश्व के अधिकांश व्यक्ति लेसर आधारित संचार प्रणाली के रूप में लेसर का दैनंदिन जीवन में उपयोग कर सकेंगे।

लेसर यंत्र की कल्पना सर्वप्रथम १९५१ में डॉ० चार्ल्स टाउन्स ने की थी। उन्होंने सोचा कि आकाश में कितनी गैसें भरी पड़ी हैं; वे इधर-उधर चक्कर काटती रहती हैं। इन व्यूहाणुओं को यदि किसी यंत्र के द्वारा ऊर्जा में बदला जा सके तो उस शक्ति का पारावार न रहे। इसी कल्पना ने लेसर यंत्र को जन्म दिया।

लेसर वस्तुतः एक विशिष्ट प्रकार की प्रकाश किरणें ही हैं, जिसमें एक ही आवृत्ति वाली तरंगें होती हैं। दूसरे शब्दों में जो अंतर साधारण भीड़ के चलने में और सैनिकों में क्रमबद्ध एक रूप संचालन में होता है, वही अंतर साधारण प्रकाश व लेसर के प्रकाश में होता है। लेसर का प्रकाश साधारण प्रकाश की तुलना में फैलता नहीं, अपितु संकुचित प्रकाशपुंज के रूप में ही सीधे आगे बढ़ता है।

आज जहाँ-जहाँ संप्रेषण हेतु रेडियो अथवा विद्युत तरंगों का उपयोग होता है, भविष्य में उनकी जगह लेसर तरंगों का उपयोग कर न केवल संदेश भेजने की क्षमता बढ़ाई जा सकेगी, बल्कि सूचना, ध्वनि व चित्र प्रसारण का क्षेत्र भी सहस्र गुना विकसित

किया जा सकेगा। माइक्रोवेव की अपेक्षा लेसर किरणों के उपयोग से संदेश भेजने की क्षमता दस हजार गुनी बढ़ाई जा सकती है। लेसर किरणों की सघन वाहकता का अनुमान इसी उदाहरण से लगाया जा सकता है। अमेरिका के पश्चिमी व पूर्वी तटों के बीच संदेश भेजे जाने वाले वर्तमान सभी उपकरणों के स्थान पर मात्र एक लेसर कार्य कर सकता है। लेसर तरंगों की सहायता से प्रति सेकंड सवा चार करोड़ बार संदेशों का आवागमन हो सकता है।

कुछ पदार्थों को गरम या उत्तेजित करने से एक विशेष प्रकार की ऊर्जा एवं आभा निकलती है जो रोशनी की बत्ती से भिन्न प्रकार की होती है। साधारण प्रकाश कई रंगों की किरणों से मिलकर बना होता है और वे किरणें अलग-अलग लंबाइयों और कलाओं की होती है। इंद्रधनुष पड़ते समय यह लंबाई की भिन्नता ही उस सुंदर दृश्य के रूप में अपना परिचय देती है। इस बिखराव को एक भेड़ चाल कह सकते हैं। लेसर प्रक्रिया में परमाणुओं को उत्तेजित करके एक ही रंग की, एक ही कद की किरणें निकाली जाती हैं और उन्हें अधिकाधिक सघन बनाया जाता है। इतने से ही वे किरणें इतनी प्रचंड हो उठती हैं कि गजब के काम करती है। इन्हें अब तक के उपलब्ध शक्ति-स्रोतों में सबसे अधिक प्रचंड माना जाता है। अणु विस्फोट की शक्ति से भी कई क्षेत्रों में यह अधिक तीखी और पैनी हैं। लेसर किरणों के प्रयोगों से अगले दिनों भौतिक क्षेत्रों में अनोखी एवं क्रांतिकारी प्रतिक्रिया सामने आ रही है। उन्हीं में से एक 'होलोग्राफी' भी है। इसी प्रकार लेसर वेल्डिंग ने भी चमत्कारी सामर्थ्य दिखाई है। हीरा अत्यंत कठोर धातु है। उसे काटना और छेदना कठिन काम है। लेसर किरणें हीरे को १/५०००० सेकंड में छेद सकती है अर्थात यदि ५०००० हीरे एक पंक्ति में रख दिए जाएँ

और उनके एक छोर से लेसर किरणें प्रवेश करा दी जाएँ तो वह एक सेकंड में ही ५०००० हीरों को छेदकर रख देगी। ये लेसर किरणों में विद्यमान तीव्र ऊर्जा के कारण ही संभव हो पाता है। अब ऐसी लेसर किरणें निकाली जा चुकी हैं, जो कागज पर लिखे काले अक्षरों को वाष्प की तरह उड़ाकर कागज को कोरा बना सकती हैं। अतिघातक मिसाइलें बनाने में भी इनका उपयोग किया जा रहा है। यह दुरुपयोग कभी भी महा विनाश ला सकता है, यह वैज्ञानिक समय-समय पर कहते रहे हैं।

लेकिन लेसर उपयोग का विज्ञान, उद्योग तथा कला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलिब्धयों अथवा घातक योजनाओं से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। भविष्य में प्रदूषणरहित, सस्ती तथा असीमित ऊर्जा उत्पादन के रूप में प्राप्त होना है। वैज्ञानिकों को ऐसी आशा है कि निकट भविष्य में ही वे सक्रिय लेसर किरणों की अत्यधिक ऊर्जा का उपयोग कर हाइड्रोजन अणुओं को गलाने की उच्च तकनीक विकसित करने में सफल होंगे। यदि वैज्ञानिकों का यह प्रयास सफल हो गया तो ऊर्जाविशेषज्ञों का विश्वास है कि जब तक सृष्टि में मनुष्य का अस्तित्व रहेगा, तब तक वह ऊर्जा की दृष्टि से निश्चिंत रह सकेगा।

प्रकृति में सूक्ष्म, अदृश्य किंतु प्रचंड ऊर्जा संपन्न घटक इतने अपरिमित व विलक्षण हैं कि उनकी सामर्थ्य ही मनुष्य को स्तब्ध आश्चर्यचकित कर देती है। प्रकृति में विद्यमान पंचतत्त्वों में एक तत्त्व समीर (हवा) है जो अदृश्य होते हुए भी अपनी सूक्ष्म किंतु प्रचंड सामर्थ्य का सतत परिचय देती रहती है। यों सामान्य रूप से तो वह पेड़-पौधों को हिलाने, त्वचा में स्पर्शानुभूति देने, मंद-मंद बहकर सुरभि का विस्तार करने जैसा कार्य करती भर दिखाई देती है।

किंतु उसका मूलभूत उद्देश्य एवं स्रष्टा द्वारा निर्धारित कार्य है, सृष्टि के संतुलन को बनाए रखना। यह प्राणतत्त्व है। जिसके अभाव में कुछ क्षण भी जीवधारी अपना अस्तित्व खो सकते हैं। इस प्राण को महाप्राण के पुंज से व्यष्टि के हर घटक तक पहुँचाने का पुण्य-परमार्थ पवनदेव का ही है।

इसे जीवन-मूरि भी कहा जा सकता है। क्योंकि धरती पर बसने वाले प्राणियों के अस्तित्व उनके उत्थान, पतन, विकास, गतिशीलता को यह आमूल-चूल प्रभावित करती है। आहार—अन्न एवं जल के रूप में तो बाद में लिया जाता है। पहले उसे प्राणवायु के रूप में रक्त के लाल कोश श्वास द्वारा ग्रहण की गई वायु के रूप में कोश-कोश तक पहुँचाकर ऊर्जाचक्र गतिशील बनाते हैं।

पृथ्वी के अयन मंडल के तप्त क्षेत्र एवं ठंढे बरफीले ध्रुवीय प्रदेशों की वायु के परस्पर बदलते रहने से ही मौसम बनते व बदलते रहते हैं। क्रियाशील यह सूक्ष्म शक्ति अपने प्रचंड रूप में विभीषिकाओं को जन्म देती व मौसम व्यतिरेक के रूप में देखी जा सकती है। संतुलित रूप में यह पर्यावरण के सहकार-सहजीवन को यथारूप बनाए रखती है। प्रकृति के अंतराल में सूक्ष्म रूप से सक्रिय वायुतत्त्व ही विषुवत रेखा पर हजार मील से अधिक प्रति घंटे की चाल से बल पैदा कर पृथ्वी को धुरी पर घूमने हेतु अभीष्ट ऊर्जा प्रदान करता है।

हमें दिखाई नहीं देता लेकिन इस धरा को रहने योग्य बनाने में हवाओं की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी किनारों को गर्म होने से उत्तरी ध्रुव की हवाएँ ही बचाती हैं। मानसून इत्यादि हवाओं के नाम से प्रसिद्ध ऊर्जा संपन्न ये वायु के उतार-चढ़ाव ही सारे संसार के महाद्वीपों पर वर्षा होने न होने के

लिए उत्तरदायी है। इनमें जरा भी दिशाभ्रम होने से वर्षा का अनुपात घट-बढ़ जाता है।

हवाओं को अपने पुरुषार्थ से अनुकूल बनाकर सुनियोजित कर पृथ्वीवासियों ने समृद्धि बढ़ाने में सफलता प्राप्त की है। हालैंड के समुद्रतट पर बहने वाली हवा को पवनचक्की के माध्यम से ऊर्जा उत्पन्न करने योग्य अनुकूल बनाकर वहाँ के निवासियों ने अपने सारे उद्योगों का संचालन ही नहीं किया, अपितु समुद्रतट से नीचे भूतल के होने के अभिशाप से पानी को हवा के माध्यम से उलीचकर अपने रहने योग्य भूमि भी समुद्र से छीन ली। समुद्र के जल जिसको निकाल फेंकने की शक्तिसंपन्न पवन की वास्तविक सामर्थ्य का अनुमान लगाना भी असंभव है।

आज तो जहाज ईंधन से चलते हैं। पुरातन काल में वे वायु के बहाव की दिशा के अनुरूप द्रुतगति से दौड़ते थे। पाल नौका व पाल वाले जहाज इस सदी के प्रारंभ तक पानी में गतिशील रहे हैं। हवा की सामर्थ्य का पारावार नहीं है। हवा की गर्म थपेड़ों ने ही सहारा के रेगिस्तान को वर्तमान विशाल रूप दिया है। वाटरलू की लड़ाई में नेपोलियन मात्र इस कारण हारा कि हवा उसके प्रतिकूल थी व मौसम-परिवर्तन से हुई अकारण वर्षा ने युद्धस्थल को कीचड़ में बदलकर उसकी सामर्थ्य को ही नहीं, वरन एक महत्त्वपूर्ण युग को समाप्त कर दिया।

टारनेडो या चक्रवात पवन के ही प्रचंड एवं विकृत रूप हैं। इनमें कितनी विपुल ऊर्जा होती है, इसे प्रत्यक्षत: तो नहीं, गणना के आधार पर परोक्ष रूप से जान लिया गया है। पाया गया है कि इनमें गतिज ऊर्जा (काइनेटिक एनर्जी) का मान लगभग $१०^{१०}$ जूल होता है। इतना प्रचंड वेग उत्पन्न करने के लिए यदि मानवीय प्रयास किए

जाएँ, तो लगभग सौ गुना और अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी। चक्रवातों में ऊर्जा कितनी प्रचंड होती है ? इसका आभास इससे लग सकता है कि हिरोशिमा पर डाले गए जिस एटम बम ने विनाश लीला का दृश्य उत्पन्न किया था उससे भी $१०^{१३}$ जूल ( $१०^{७}$ किलोवाट प्रति घंटा) ऊर्जा उत्पन्न हुई थी। अमेरिका में प्रति वर्ष औसतन ६०० से ७०० चक्रवात आया करते हैं। इनमें से एक ने ७० टन वजनी रेल के पाँच डब्बों को रेलवे लाइन से उठाकर १०० से २०० मीटर की दूरी तक फेंक दिया था।

वस्तुतः वायु की अदृश्य शक्ति-सामर्थ्य का अभी पूरा अनुमान वैज्ञानिकों को लग नहीं पाया है। जब यह असंभव हो सकेगा तो चक्रवातों से उद्भूत ऊर्जा को विधेयात्मक कार्यों हेतु भी प्रयोग किया जा सकेगा। यह सूक्ष्म की सामर्थ्य का चमत्कार है।

प्रकृतिजगत परमाणुओं से विनिर्मित एक ऐसा विलक्षण संसार है जिसमें अणु में विभु की महत्ता कण-कण में प्रतिपादित होती दिखाई देती है। परमाणु का भार नगण्य है व शक्ति अकूत। यदि सारी पृथ्वी को पीटकर नाभिकीय घनत्व के बराबर लाया जा सके, तो वह कुछ घन फीट में ही समा जाएगी। महत्ता सूक्ष्म की है। उपरोक्त उदाहरण उसी का प्रतिपादन करते हैं। चेतना का संसार और भी विलक्षण है एवं वह पदार्थ के माध्यम से अपनी महत्ता दरसाता रहता है।

## वैयक्तिक चेतना पर आरोपित सूक्ष्मीकृत भौतिकी

भगवान को सृष्टि के आरंभ में एक से अनेक बनना पड़ा था, तब इतना सृष्टि-विस्तार संभव हो सका। विश्व में महान परिवर्तन करने वालों को भी अपने सहयोगियों की संख्या बढ़ाकर यही करना पड़ा है।

ऋषिकल्प व्यक्तियों को अपनी निज की क्षमता को ही कई खंडों में विभाजित करके कई गुना करना पड़ता है। सभी जानते हैं कि चीरने, कूटने, तोड़ने, पीसने की प्रक्रिया के द्वारा एक वस्तु के कई टुकड़े हो जाते हैं। आमतौर से इस कूट-पीस के द्वारा प्रत्येक टुकड़ा कमजोर पड़ता जाता है। किंतु अपवाद के रूप में कई बार अधिक सशक्त भी होता है। मिट्टी का ढेला एक होता है, पर यदि उसके अणु-परमाणुओं को विखंडित करता चला जाए तो अंततः भयंकर ऊर्जा का विस्फोट होता है। छोटा कण बड़े टुकड़ों की तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली होता है।

सभी जानते हैं कि पदार्थ की सूक्ष्म इकाई अणु है जो स्वतंत्र अस्तित्व रखती है एवं उसमें पदार्थ के सभी गुण विद्यमान होते हैं। सभी अणुओं की सूक्ष्मता का स्पष्ट अनुमान अभी तक हो नहीं पाया है। अलग-अलग पदार्थों के अणु अलग-अलग आकार के होते हैं। किसी पदार्थ का अणु एक इंच के अरबवें भाग का हो सकता है तो किसी का इंच के दस लाखवें भाग के बराबर। यह तो पदार्थ की बात हुई। द्रव्य रूप में पोटेन्सी बढ़ने से इन सूक्ष्म अणुओं की संख्या व सामर्थ्य और बढ़ जाती है, इसका प्रतिपादन होम्योपैथी के विद्वानों ने किया है एवं प्रयोग-परीक्षणों के द्वारा उसे सिद्ध भी कर दिया है। द्रव्य से विरल एवं विराट रूप वाला स्वरूप गैस का है। हमारे चारों ओर स्थित अदृश्य हवा का जो जखीरा है, उसके एक घन इंच में लगभग पाँच हजार शंख अणु विद्यमान हैं।

पदार्थ जितना सूक्ष्म होता चला जाता है, इन अणुओं की संख्या भी उतनी ही बढ़ जाती है एवं ऊष्मा-ऊर्जा के कारण उसकी गति में अभिवृद्धि हो जाती है। गैस के रूप में अणुओं की गति और तेज हो जाती है।

चूँकि अणुओं का परस्पर आकर्षण बल उन्हें बाँधे रहकर अपने स्थान पर रोके रहता है, इसीलिए पदार्थ ठोस रूप में बना रहता है। ज्यों-ज्यों ऊष्मा से इन्हें विखंडित करने का प्रयास किया जाता है, गति तीव्र हो जाती है एवं आकर्षण बल कम। ठोस-द्रव-गैस-प्लाज्मा क्रमशः ये अवस्थाएँ इस प्रक्रिया के कारण जन्म लेती हैं एवं पदार्थ को अति सूक्ष्म बना देती हैं।

चेतना का स्वरूप इससे भिन्न है लेकिन सूक्ष्मीकरण के प्रकरण में सूक्ष्मता के अनुपात में, प्रखरता में अभिवृद्धि एवं सर्वव्यापकता का सिद्धांत उस पर और भी समग्र रूप में लागू होता है। मानवी काया की सूक्ष्म संरचना भी कुछ ऐसी है कि अंतराल में प्रसुप्त उस बीज-भंडार को विकसित किया जा सकने पर वह उसे अत्यंत सामर्थ्यवान बना देती है। मानव के अंतराल में तीन शरीर, पाँच कोश एवं षट चक्र इसी स्तर के हैं। इन्हें विकसित कर अंतःसत्ता को विराट बनाया जा सकता है। ये सभी एक ही शरीर के अंग-अवयव होते हुए भी अपना अलग विशिष्ट अस्तित्व प्रदर्शित करने लगते हैं।

शरीर एक जड़ पिंडमात्र नहीं चेतनसत्ता का समुच्चय है। जिसे काया के कलेवर के रूप में ओढ़कर चलना पड़ता है। वैज्ञानिकों की स्थूल दृष्टि अभी तक प्रत्यक्ष को प्रमाण मानकर चलती रही है। इसी कारण चेतना के अस्तित्व को जान-बूझकर नकारा जाता रहा। लेकिन जैसे-जैसे भौतिकी भी सूक्ष्मीकरण की गहराइयों में प्रवेश करने लगी। चेतना के आयाम संबंधी कई नए क्षेत्र ऐसे प्रकाश में आने लगे, जिन्हें स्वीकार करने के लिए उन्हें अब विवश होना पड़ रहा है।

आइन्स्टीन कहा करते थे, "अनिश्चितता के सिद्धांत पर टिकी पार्टीकल फिजिक्स के आधार लूले-लँगड़े हैं। ईश्वर कभी पाशे नहीं फेंका करता। दुनिया एवं इसमें रहने वाले जीवधारियों का

समुदाय भले ही ऊपर से कितना ही अव्यवस्थित क्यों न लगे! उसके पीछे के सुलझी हुई चेतना है जो लीलामयी तो है, झक्की नहीं है।" अन्यान्य वैज्ञानिकों के विपरीत उन्होंने विचार तरंगों के आधार (प्योर थॉट) 'यथार्थता' को पकड़ने एवं तदनुसार सृष्टि की परिकल्पना करने को कहा था। वास्तव में सारे बलों के एकीकरण के सिद्धांत के माध्यम से विभिन्न प्रतिपादनों को प्रस्तुत कर अब वैज्ञानिकों के कदम सत्य की ओर बढ़ते दिखाई देते हैं।

इस एकीकरण की दिशा में बढ़ता हर कदम क्रमश: भौतिकी के अविज्ञात आयामों को खोलने में तथा उसे आत्मिकी के समीप ला पाने में समर्थ हुआ है। आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व अलवर्ट आइन्स्टीन ने देश (स्पेस) की परिकल्पना दो बलों के एकीकरण के रूप में की थी, एक गुरुत्वीय (ग्रेविटेशनल) एवं दूसरा, विद्युत चुंबकीय (इलेक्ट्रो मैग्नेटिक)। दोनो ही चार मूल बलों में से दो प्रमुख बल हैं। अन्य दो बल हैं 'वीक फोर्स' एवं 'स्ट्रांग फोर्स', जिनकी खोज बाद में हो पाई। आज वैज्ञानिक इन चार बलों के एकीकरण के माध्यम से एक 'यूनिफाइड फील्ड' की परिकल्पना भर करते हैं, लेकिन उस समय, जबकि इनकी अत्यल्प जानकारी भर उपलब्ध थी, 'फोर डाइमेंशनल कवर्ड स्पेस टाइम' को प्रयोगों के माध्यम से आइन्स्टीन जैसे द्रष्टा वैज्ञानिक ने प्रमाणित कर दिखाया था। यह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है कि गुरुत्वरूपी ज्यामितीय विचार एवं विद्युत चुंबकत्व रूपी देशकाल संरचना का एकीकरण उन्होंने उसी समय सोच लिया था। उनका तब का एकीकरण सिद्धांत सूक्ष्म भौतिकी अर्थात ब्रह्मांड की चेतनसत्ता के मूल प्रेरक बल की गहराइयों में जाने हेतु आने वाली वैज्ञानिक पीढ़ी को ऐसी दिशाएँ दे गया जो कि शाश्वत सनातन है। यही कारण है कि आज आइन्स्टीन

को विज्ञान जगत में वही स्थान प्राप्त है, जो आर्य साहित्य में व्यास एवं साधना के क्षेत्र में पतंजलि एवं विश्वामित्र को।

प्रकृति की समस्त हलचलों का केंद्रबिंदु एक केंद्रीय शक्ति है। वही विविध रूप धारण करती तथा संसार को रचती है। संपूर्ण सृष्टि में वही संव्याप्त है। वेदांत में इस महाशक्ति को ब्रह्म कहा गया है। वेदांत दर्शन के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त ब्रह्मांड में और कुछ नहीं है। '**एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति**' की उक्ति इसी तथ्य पर आधारित है। उसके प्रकाश से ही तारे, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य सभी प्रकाशित हैं। जीव-जंतु, वनस्पतियों में उसकी चेतन तरंगें ही क्रीड़ा-कलोल कर रही हैं। उत्पत्ति, विकास एवं विनाश की प्रक्रिया इस महाशक्ति द्वारा ही संचालित है।

जिस प्रकार सूर्य ओस की असंख्य बूँदों में असंख्य प्रतीत होता है उसी प्रकार देशकाल की परिधि में आकर उससे परे रहते हुए भी वह शक्ति असंख्य नाम-रूपों में प्रतिभासित होती है। स्वरूप में भिन्नता होते हुए भी कारणभूत सत्ता की दृष्टि से समस्त जड़-चेतन में वही विद्यमान है। सृष्टि की समस्त रचनाएँ उसकी ही क्रमिक अभिव्यक्तियाँ है। इस तथ्य के अनुसार सारा संसार एक शक्ति के सूत्र में माला के मनके के समान गुँथा हुआ है। गुँथने वाली इस शक्ति को ही लौकिक परिभाषा के अनुसार 'मन' कहा गया है। वस्तु संसार का स्वरूप मन के संकल्प के अनुसार ही बनता है। सबमें विद्यमान इस सूक्ष्म शक्ति के द्वारा ही स्रष्टा समस्त प्रकृति पर नियंत्रण रखता एवं संचालन करता है।

ब्रह्मांड की वास्तविक शक्ति सूक्ष्म में ही निहित है। ऊर्जा, प्रकाश, चुंबकत्व, गुरुत्वाकर्षण, विद्युत उसी के विविध रूप हैं। इन सबके समष्टिगत स्वरूप को ही ब्रह्म कहा गया है। आधुनिक

विकासवाद की अवधारणा भी इस सिद्धांत पर ही अवलंबित है। जीव द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) से जीव की विकास प्रक्रिया में एक शक्ति के अनेक में रूपांतरित होने का ही तथ्य छिपा है। सापेक्षवाद के प्रवर्तक भौतिक शास्त्र के मूर्द्धन्य वैज्ञानिक आइन्स्टीन के अनुसार सर्वत्र ऊर्जा संव्याप्त है। समस्त पदार्थ ऊर्जा के ही स्थूल रूप हैं। ठोस, द्रव, गैस की विभिन्न अवस्थाएँ ऊर्जा की क्रमशः स्थूल से सूक्ष्मतर स्थितियाँ हैं। ये अवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं। स्थूल से सूक्ष्म एवं सूक्ष्म से स्थूल में बदलती रहती हैं। इसे 'जीवनचक्र' नाम ऊर्जा के रूपांतरण प्रक्रिया के कारण ही दिया गया है। ठोस रूप में दिखाई पड़ने वाला पदार्थ भी अत्यधिक विकिरण के प्रभाव से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। यह प्रकाश की गति प्राप्त कर ले तो पूर्णतया ऊर्जा में परिवर्तित हो जाएगा। इसका स्थूल स्वरूप अदृश्य हो जाएगा।

ईशोपनिषद के प्रारंभ में कही जाने वाली ऋचा **पूर्णमदः पूर्णमिदं** वह पूर्ण है, यह भी पूर्ण है के माध्यम से ब्रह्मांडव्यापी व्यक्त एवं अव्यक्त सत्ता के उसी स्वरूप को प्रकाशित करती है, जिसे आइन्स्टीन ने अपने सूत्रों में इस सदी के प्रारंभ में कहा था। वेदांत में भी तकनीकी भाषा का प्रयोग हुआ है एवं उपनिषदकार जब 'वह' तथा 'यह' उनकी पूर्णता का उदघोष करता है, तो 'वह' परोक्ष सत्ता परब्रह्म के तात्पर्य में तथा 'यह' एक ऐसी वस्तु की ओर संकेत करता है जो इंद्रियगम्य है। यह मंत्र देश, काल और परिणाम की अभिव्यक्ति के प्रतीक इस व्यक्त जगत का बाधक है।

इस प्रकार जहाँ तक परोक्ष जगत की सूक्ष्मीकृत संरचना एवं उसके विभिन्न आयामों के प्रकटीकरण का प्रश्न है, भारतीय चिंतन और आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन दोनों एक मत हैं। दोनों इस प्रत्यक्ष

जगत की विविधता के पीछे परोक्ष में निहित मूल एकता को मानते हैं। लेकिन न ही उपनिषद एवं न ही प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक बहिरंग से संतुष्ट होकर रह जाते हैं। दोनों ही वस्तुओं के अंतस् को, सत्य के चैतन्य पहलू को जानना चाहते हैं। भौतिकी को दार्शनिक ढंग से समझने-समझाने वालों ने यह प्रयास पूर्वात्य दर्शन के सहयोग से भली प्रकार किया है।

१९७४ में आइन्स्टीन की एकीकरण की मान्यता को मूर्त रूप देने का प्रयास योगेशपति एवं नोबुल पुरस्कार विजेता अब्दुस्सलाम (दोनों ही एशियन किंतु अमेरिका के नागरिक) ने एक ओर तथा होवर्ड जार्जी एवं शेल्डन ग्लाशोव ने दूसरी ओर आरंभ किया। इसे उन्होंने ग्रांड यूनिफिकेशन का नाम दिया। क्वार्कस एवं लेप्टान कणों की गहराई में हम प्रवेश न करें तो भी भारत की पुणे के समीप कोलाई स्वर्ण खान में पकड़े गए दीर्घजीवी प्रोटान एवं न्यूट्रान कणों के आधार पर द्रव्य (पदार्थ) की वर्तमान अवस्था प्रतिद्रव्य का उसके ऊपर हावी होना तथा इसके माध्यम से एक पाँच आयामीय जगत की कल्पना करना अब आसान हो गया है। अब प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि इलेक्ट्रान व न्यूट्रोनों का भार शून्य से अधिक है। प्रो० ग्लाशोव इस आधार पर कहते हैं कि चार मूल बलों का एकीकरण अब सिद्ध किया जा सकता है एवं यह भी कि आइन्स्टीन अपने इस कथन में असत्य नहीं कह रहे थे कि इस विराट जगत के मूल में चेतनसत्ता कार्यरत है। आइन्स्टीन ने भौतिकी से अधिक महत्त्व ज्यामिती को दिया जो कि किन्हीं निश्चित सिद्धांतों पर तो आधारित है। वे कहते थे 'क्वाण्टम फिजिक्स' में अनिश्चितता को महत्त्व दिया गया है जबकि पार्टीकल फिजिक्स (कण भौतिकी) में संभाव्यता के सिद्धांत को। उन्हें ये दोनों बातें पसंद नहीं थीं।

उन्होंने 'सपोज' के आधार पर नहीं, बल्कि 'प्योर थॉट' के आधार पर परोक्ष के रहस्यों को जानने हेतु प्रयास करने पर बल दिया।

अब उन्हीं दो मूल बलों से चार बल, उनके एकीकरण एवं तदनुसार भौतिकी के सूक्ष्म परिसर की परिकल्पना के बाद पिछले कुछ वर्षों में परागुरुत्व (सुपर ग्रेविटी) एवं प्रतिगुरुत्व (एंटी ग्रेविटी) का सिद्धांत एकीकरण की नींव को और भी मजबूत करने को आ खड़ा हुआ है। संभव है कि इसी एंटी ग्रेविटी में सूक्ष्मजगत का सारा ढाँचा निहित हो, जिसमें कण-प्रतिकण प्रकाश की गति से भी तीव्र परिभ्रमण करते हों—सारा पारलौकिक गतिक्रम यहीं से संचालित होता हो। परागुरुत्व भौतिकी का नवीनतम अजूबा है एवं संभव है आत्मिकी के समीप आने का एक माध्यम भी। इसके प्रमुख प्रवक्ता प्रो० न्यवेन ह्यूजेन का कथन है कि पूर्वार्त दर्शन वर्णित सभी 'गपबाजियाँ' (जैसा कि वे पूर्व में मानते थे) संभवतः परा एवं प्रति गुरुत्व के माध्यम से वैज्ञानिकों को समझ में आने लगें एवं आइन्स्टीन का वह कथन सत्य लगने लगे कि ईश्वर समझदार है, वह कभी उलटे-सीधे पाशे नहीं फेंकता। काल विवर (ब्लेक होल्स) आदि की कल्पना सत्य हो सकती है, पर है वह भी तर्कसम्मत, वैज्ञानिकता का ही एक अंग है न कि अनिश्चितता के आधार पर की गई परिकल्पना।

१९३४ से लेकर अब तक भौतिकीविद दार्शनिकता व वैज्ञानिकता के पलड़े में झूलते रहे हैं और यह भूलते रहे हैं कि वह विज्ञान के दर्शन का एक ही पलड़ा है। सर जेम्स जीन्स इसीलिए कहते थे कि भौतिक जगत की समस्त घटनाएँ, सामंजस्यपूर्ण हैं, यहाँ तक कि वे भी जिन्हें हम संयोग मान बैठते हैं। इन सामंजस्यपूर्ण घटनाओं को गणित की भाषा से सही ढंग से व्यक्त किया जा

सकता है। भौतिक जगत में सामंजस्यपूर्ण घटनाओं को रचने वाली अवश्य ही कोई विचार बुद्धि युक्त सत्ता है। वह महान गणितज्ञ प्रतीत होती है। अतः उसे परमेश्वर कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं है।

भौतिक जगत में पग-पग पर हर पहलू में हमें गणितीय प्रति रूप दिखाई पड़ते हैं। अतः इसे किसी भी हालत में यांत्रिक जगत, जड़ जगत नहीं कहा जा सकता। जो भी कुछ दृश्य रूप में घटित होता है, वह विराट चेतनसत्ता की ही अभिव्यक्ति मात्र है। मस्तिष्क यदि उन्हें स्थूल रूप में देखें, तो वे उसी सीमा में उसे दिखाई देंगी, लेकिन चेतना के जागरण द्वारा, सूक्ष्मीकृत मानवीय चेतन सत्ता के माध्यम से अदृश्य—पराभौतिक घटनाक्रमों को देख सकना, उनमें भाग ले सकना भी पूर्णरूपेण संभव है। वस्तुतः मानवीय मन जो स्थूल मस्तिष्क का चेतन प्रतिबिंब है, अपनी जाग्रति की पराकाष्ठा की स्थिति में जड़ व चेतन भौतिक सत्ताओं का अंतर भूलकर सूक्ष्मजगत का ही एक अंग बन जाता है।

❒

# ब्राह्मी चेतना का विराट महासागर और हम उसके एक घटक

दृश्य और अदृश्य, ज्ञात और अज्ञात संसार की अनेक विशेषताएँ इस सृष्टि के ईश्वर की नियामक सत्ता के अधीन होना ही प्रमाणित नहीं करती, वरन यह भी सिद्ध करती हैं कि समग्र ब्रह्मांड एकसूत्र में आबद्ध है। ब्रह्मांड परिवार के सदस्य एकदूसरे से प्रभाव ग्रहण करते हैं और उस आधार पर अपनी गतिविधियों को निर्धारित करने के लिए बाध्य होते हैं।

प्रकृति की अनेक शक्तियाँ हमें प्रभावित करती हैं। कई बार तो उनका उपयोगी-अनुपयोगी प्रभाव-दबाव अत्यधिक होता है, तो भी मानवीय चेतना की विशेषता यह है कि वह अनुपयोगी प्रभाव से अपने को बचाने को कोई न कोई मार्ग ढूँढ़ निकालती है। उपयोगी प्रभावों से अधिक लाभान्वित होने का उपाय भी उसे मिल ही जाता है।

सरदी-गरमी, आँधी-तूफान, अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि के उलटे-सीधे झंझावत अपने ढंग से चलते रहते हैं। दूसरे प्राणी अपनी शारीरिक विशेषताओं के कारण तथा अत्यधिक प्रजनन शक्ति के कारण अपना अस्तित्व बनाए रहते हैं। मनुष्य इन दोनों ही दृष्टियों से पीछे है, फिर भी प्रकृति के आघात सह सकने की व्यवस्था बना लेता है, यह उसका बुद्धि-वैभव ही है।

सूर्य को ही लें; उसका अनुदान पृथ्वी के प्राणियों पर अनवरत रूप से बरसता है। पर यदा-कदा उसकी ऐसी स्थिति भी होती है, जो पृथ्वी पर अपना अनुपयोगी प्रभाव डाले। उन दबावों को रोक न सकने पर भी पूर्व जानकारी के आधार पर बचाव के उपाय ढूँढ़ लिए

जाते हैं। सतर्कता बरतना अपने आप में बड़ा उपाय है, जिससे अनायास ही बहुत कुछ बचाव हो जाता है। इसी प्रकार उसके उपयोगी संपर्क को बढ़ाकर वे लाभ पाए जा सकते हैं जो अनजान स्थिति में पड़े रहने पर मिल सकने के संभव नहीं हैं।

साधारणतया सूर्य आग का एक ऐसा गोला है जिसके किसी प्रभाव को रोकना अपने लिए कठिन ही हो सकता है फिर भी अनावश्यक ताप से बचने के लिए छाया के कितने ही उपाय किए जाते हैं। सूर्य की अपनी महत्ता और अपनी उपयोगिता है। पर उससे भी अधिक प्रशंसा मानवीय बुद्धि की है, जो इतने समर्थ शक्तिपुंज से उपयोगी प्रभाव ग्रहण करने और अनुपयोगी से बच निकलने का रास्ता खोज लेती है।

सूर्य को उदय होते देखकर ऋषि गाता है—'**प्रायः प्रजानां उदयति एष सूर्यः**'। यह प्रजाजनों का प्राण—सूर्य उदय हो रहा है। संध्या-वंदन की सूर्योपस्थान क्रिया को करते हुए गायत्री मंत्र बोला जाता है और उसके माध्यम से माँगा जाता है कि सविता देव हमारी विवेक बुद्धि को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करें।

भौतिक विज्ञान प्रत्यक्षवाद पर निर्भर रहा है। प्रत्यक्ष की उसकी परिभाषा पिछले दिनों बहुत उथली और भोंथरी थी। अब धीरे-धीरे वह पैनी और गहरी होती जा रही है। पिछले दिनों भौतिक विज्ञानियों की दृष्टि में वह मात्र आग का गोला था; गरमी, रोशनी भर देता था। पदार्थ की दृष्टि से सूर्य की इतनी ही व्याख्या पर्याप्त प्रतीत हुई थी, पर अब बात आगे बढ़ गई है और विचार अधिक गहराई तक होने लगा है। पिछले दिनों विज्ञान के लिए पदार्थ ही सब कुछ था। भावना और अध्यात्म के संबंध में उपेक्षा और उदासीनता थी। अधिक से अधिक शरीर के एक अवयव

मस्तिष्क की हरकतों को मन:शास्त्र के नाम से एक स्थान दिया जा सका था। श्वास-प्रवाह, रक्त-संचार, स्नायु-संचालन की तरह ही मस्तिष्क को भी सोचने वाला यंत्र मान लिया गया था और उसकी हलचलों को मन, बुद्धि, चित्त आदि की संज्ञा दे दी गई थी। जितना पदार्थ क्षेत्र में आता है उतना ही पर्याप्त माना गया। चेतना की गहराई को देखने, समझने की दिशा में बहुत समय तक कोई कहने लायक दिलचस्पी नहीं ली गई। तदनुसार सूर्य का भी चेतना से कुछ संबंध हो सकता है, इस पर विचार नहीं किया गया। पर अब उस संदर्भ में गहराई तक जाने और गंभीर विचार करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

सूर्य को अब जीवन का केंद्र माना जा रहा है। वनस्पतियाँ उसी से जीवन ग्रहण करती हैं और प्राणियों को भी अपनी प्राणशक्ति के लिए बहुत करके सूर्य पर ही निर्भर रहना पड़ता है। विज्ञान स्वीकार करता है कि सूर्य और पृथ्वी के बीच जो दूरी है, वह जीवन की उत्पत्ति एवं स्थिरता के लिए आदर्श है। यदि दूरी कुछ घट जाए या बढ़ जाए तो फिर या तो अपना भूलोक आग्नेय हो उठेगा या हिमाच्छादित बन जाएगा, तब प्राणियों या वनस्पतियों की उपस्थिति यहाँ संभव न हो सकेगी।

सूर्य में जो काले धब्बे हैं, वे उनमें समय-समय पर पड़ते रहने वाले खड्ड हैं। ये कभी गहरे हो जाते हैं; कभी उथले बन जाते हैं, तब वे कम या अधिक दिखाई पड़ते हैं। पहले उन धब्बों से अपना कुछ बनता-बिगड़ता नहीं यह माना जाता था; पर ऐसा नहीं समझा जाता है। वैज्ञानिक उन्हें बहुत बारीकी से देखते हैं और इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इनका क्या प्रभाव व परिणाम अपनी पृथ्वी पर पड़ेगा?

जब काले धब्बे बढ़ते हैं तो सूर्य से प्रकाश एवं गरमी की ही नहीं दूसरे उन उपयोगी तत्त्वों की भी कमी पड़ जाती है जो प्राणियों के लिए विचित्र प्रकार से स्वास्थ्य-संरक्षक होते हैं। जिस साल सूर्य के धब्बे बढ़ते हैं उस साल अनाज की, फलों की पैदावार कम होती है। पौधे अभीष्ट गति से नहीं पनपते। दाने पतले होते हैं और उनमें पोषक तत्त्व अपेक्षाकृत कम पाए जाते हैं। खाद और पानी का समुचित प्रबंध रहने पर भी इस कमी का कारण जब सूर्य के धब्बों में खोजा जाता है तो यह निष्कर्ष भी निकलता है कि उसमें जीवनीशक्ति भी भरी पड़ी है, जो पृथ्वी को तथा उस पर रहने वाले प्राणधारियों को मिलती है। इस प्रकार सूर्य मात्र गरमी देने वाली अँगीठी और रोशनी देने वाली लेंप के स्तर का न रहकर प्राणवान व प्राणदाता भी बन जाता है। वैदिक ऋषि की वह आस्था भी सही मालूम पड़ती है, जिसमें उसने उदीयमान सूर्य का अभिनंदन करते हुए उसे प्राण का उदगम कहा था।

बात बहुत आगे बढ़ गई है। सूर्य की स्थिति का प्राणियों के शरीरों और मन:संस्थानों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? यह एक अति महत्त्वपूर्ण शोध विषय बन गया है। जन्मकाल को ही लें। रात्रि और दिन में जन्म लेने वालों—गरमियों और सरदियों में जन्म लेने वालों की प्रकृति में अंतर पाया जाता है। जहाँ सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं उन शीत प्रधान और जहाँ सीधी पड़ती हैं उन उष्णता प्रधान क्षेत्रों के लोगों की जीवनीशक्ति एवं प्रकृति में अंतर पाया जाता है। अपने ही देश के बंगाली, पंजाबी, मद्रासी, गुजराती यों सभी भाई-भाई हैं; पर उनकी शारीरिक, मानसिक स्थिति में कितनी ही सूक्ष्म विशेषताएँ पाई जाती हैं। इसका कारण उन क्षेत्रों के वातावरण को समझा जा सकता है और वातावरण की भिन्नता में पृथ्वी के विभिन्न स्थानों के

साथ होने वाला सूर्य संयोग ही मुख्य आधार है। अफ्रीका के नीग्रो, इंग्लैंड के गोरे, उत्तरी ध्रुव के एक्सिमो, चीन के मंगोलियन अपनी-अपनी आकृति-प्रकृति की भिन्नताएँ रखते हैं, यों तो सभी एक मानव परिवार के सदस्य हैं। ये क्षेत्रीय विशेषताएँ या भिन्नताएँ जिस आधार पर उत्पन्न होती हैं, उनमें सूर्य संपर्क को प्रमुखता देनी पड़ेगी।

सौरमंडल के अन्य ग्रह-उपग्रहों की अपेक्षा पृथ्वी के वातावरण, वनस्पति जगत तथा प्राणि समुदाय को सूर्य और चंद्र दो ही अधिक प्रभावित करते हैं। चंद्रमा का प्रभाव समुद्र पर अधिक आसानी से देखा जाता है। ज्वार-भाटों की हलचलों में पृथ्वी पर पड़ने वाला प्रभाव-आकर्षण ही प्रमुख कारण है। यह एक प्रत्यक्ष दृश्य है इसके अतिरिक्त यह प्रभाव सूक्ष्म रीति से, सूक्ष्म परिस्थितियों पर भी पड़ता है जिससे धरती की अनेक परिस्थितियाँ प्रभावित होती हैं। यहीं तक नहीं, प्राणियों की विशेषतया मनःस्थिति पर भी इन परोक्ष दबावों के कारण अप्रत्याशित रूप से उथल-पुथल होती है। अनिच्छित रूप से कुछ ऐसा होने लगता है, जिसमें कर्त्ताओं का श्रेय या दोष उतना नहीं होता जिसके लिए उन्हें उत्तरदायी ठहराया जाता है।

सूर्य के संबंध में यह बात और भी अधिक जोर देकर कही जा सकती है। उसके उदय-अस्त का—प्रभात-मध्याह्न का पृथ्वी की तथा उसके निवासियों की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसे दैनिक जीवन की घटनाओं से जोड़कर सहज ही अनुभव किया जाता है। रात आते ही शरीर शिथिल होने लगता है। नींद आने लगती है। प्रभातकाल में ही सभी बिना जगाए जग पड़ते हैं। यहाँ तक कि पक्षियों को घोंसले से निकलकर चहचहाने, फुदकने और उड़ने की तरंग उठती है। सवेरे के और मध्याह्न के परिश्रम का परिणाम कितना भिन्न होता है, यह सभी जानते हैं। फूलों का

खिलना सूर्योदय के साथ-साथ आरंभ होता है, जबकि रात्रि को स्थिर ही नहीं रहते सिकुड़ने भी लगते हैं। शरदी-गरमी में नहीं अन्य परिस्थितियों में भी सूर्य की समीपता और दूरी का अंतर पड़ता है। ऋतुओं के प्रभाव में सूर्य ही आधारभूत कारण होता है।

सूर्य के अनुदान में व्यवधान की व्यतिरेक उत्पन्न होने से धरतीनिवासियों के लिए अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकंप, बाढ़, महामारी जैसी दुर्घटनाओं को गिना जाता है। वनस्पति के उत्पादन एवं गुण-धर्म में अंतर पड़ना, वातावरण में उलट-पुलट होने के कारण देखा जाता है। प्राणिजगत की प्रवृत्तियों के सामान्य क्रम से अंतर आने और प्रवाह उलटने पर संबंधित व्यवस्थाएँ भी ऐसी ही उथल-पुथल में गड़बड़ाती हैं। कुल मिलाकर सूर्य द्वारा उगले गए अव्यवस्थित उफान पृथ्वी के सामान्य क्रम से व्यतिरेक ही उत्पन्न करते हैं और उनके कारण अभ्यस्त ढर्रे में व्यतिरेक होने के कारण चिंताजनक परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। एक ग्रह से दूसरे ग्रह के बीच जो आदान-प्रदान सामान्यतया चलते रहते हैं; संतुलन बने रहने में सहायता करते हैं, उनमें भी इस कारण अव्यवस्था फैलती है और उस कारण विशेष रूप से विकसित और प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों के साथ अधिक घनिष्ठ होने के कारण मनुष्य ही अधिक प्रभावित होता है।

सौर-कलंकों के उभार वाले वर्षों में पिछले दिनों सर्वविदित दुर्घटनाएँ विनाशकारी युद्धों के रूप में सामने आई हैं। १७५० से १९५० तक के दो सौ वर्षों की घटनाओं पर इस संदर्भ में दृष्टिपात करने से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि सौर विकिरण का प्रभाव मनुष्यों की युद्धोन्मादी प्रवृत्ति के रूप में किस प्रकार उबल पड़ता है और किस तरह भयानक मार-काट मचती है?

१७६३ ब्रिटेन युद्ध, १७८९ फ्रांसीसी क्रांति, १८०५ ट्रेफलगर युद्ध, १८१५ वाटर लू युद्ध, १८५७ भारत गदर, १८६५ अमेरिकी गृहयुद्ध, १९०४ रूस-जापान युद्ध, १९१४ प्रथम विश्वयुद्ध, १९३४ द्वितीय विश्वयुद्ध, १९४७ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम। ये सभी समय ऐसे थे जिनमें सूर्य कलंक चरम ऊर्जा उगल रहे थे। कुछ ऐसी ही स्थिति अगले वर्षों में भी होने जा रही है, जब ये अपनी चरम स्थिति पर होंगे।

सौर-कलंकों की विशालता का एक अधिक प्रामाणिक और स्पष्ट चित्र स्काइलैब यान ने धरती पर भेजा था। उसमें ५ लाख ६० हजार मील ऊँचाई तक उठती और चारों ओर फैलती हुई सौर लपटें दिखाई गईं हैं। इससे पूर्व भी और बाद में भी ऐसे अनेक अवसर आते रहे हैं, जिसमें इन ज्वालाओं की ऊँचाई तथा चौड़ाई इससे भी कहीं अधिक थी।

ऐसे वर्षों में चर्म रोग से लेकर केन्सर अर्वुदों में असाधारण वृद्धि होती है। आत्महत्याओं का अनुपात अपेक्षाकृत अधिक बढ़ जाता है। बलात्कार, अपहरण, आक्रमण एवं अपराधों का दौर रहता है। उत्तरी ध्रुव की गतिविधियाँ असामान्य हो उठती हैं। चुंबकीय तूफान आते हैं और रेडियो तथा टेलीविजन जैसे संचार साधनों में गड़बड़ी होती है।

सौर ज्वालाएँ छोटी भी होती हैं और बड़ी भी। थोड़ी देर में ही उछलकर आकाश में विलुप्त भी हो जाती हैं और देर तक उनकी शिखा यथावत बनी रहकर लहराती रहती है। कुछ मिनटों से लेकर कुछ घंटों तक अपने एक रूप में बनी रहती है। बाद में उनका स्वरूप घटता या बढ़ता रहता है। इन्हीं विषम परिस्थितियों में नेपोलियन, चंगेजखां, सिकंदर, हिटलर जैसे दुर्दांत व्यक्ति जन्म लेते हैं।

उस अवधि में सर्वत्र उत्तेजना छाई रहती है। इसका कई क्षेत्रों को तो कुछ लाभ भी होता है किंतु मनुष्यों में विशेष रूप से आवेश दृष्टि रहती है, उनका संतुलन शिथिल पड़ जाता है और उद्धत कार्य करने लगते हैं। अपराधी प्रवृत्तियाँ पनपती हैं और विग्रह खड़े होते हैं।

अपनी पृथ्वी सूर्य से बहुत दूर है और उसका कोई प्रत्यक्ष संबंध दिखाई नहीं पड़ता, फिर भी वह पूरी तरह से सूर्य पर आश्रित है। सरदी-गरमी, वर्षा, दिन-रात्रि जैसी घटनाओं से लेकर प्राणियों में पाया जाने वाला उत्साह और अवसाद भी सूर्य संपर्क से संबंधित रहता है। वनस्पतियों का उत्पादन और प्राणियों की हलचल में जो जीवनतत्त्व काम करता है, उसे भौतिक परीक्षण से नापा जाए तो उसे सूर्य का ही अनुदान कहा जाएगा। असंख्य जीव कोशिकाओं से मिलकर एक शरीर बनता है, उन सबके समन्वित एवं सहयोग भरे प्रयास से जीवन की गाड़ी चलती है। प्राणतत्त्व से इन सभी कोशिकाओं को अपनी स्थिति बनाए रहने की सामर्थ्य मिलती है। इसी प्रकार इस संसार के समस्त जड़-चेतन घटकों को सूर्य से अभीष्ट विकास के लिए आवश्यक अनुदान संतुलित और समुचित मात्रा में मिलता है।

यह सूर्य भी अपने अस्तित्व के लिए महासूर्य के अनुग्रह पर आश्रित है और महासूर्य को भी अति सूर्य का कृपाकांक्षी रहना पड़ता है जो ज्ञान एवं शक्ति का केंद्र है वह ब्रह्म है, सविता है। अति सूर्य, महासूर्य और सूर्य सब उसी पर आश्रित हैं।

प्राणियों, वनस्पतियों और पदार्थों की गतिविधियों पर सूर्य के प्रभाव का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उसकी स्वावलंबी हलचलें वस्तुतः परावलंबी हैं। सूर्य की उँगलियों में बँधे हुए धागे ही बाजीगर के द्वारा कठपुतली नचाने की तरह विभिन्न गतिविधियों की चित्र-विचित्र भूमिकाएँ प्रस्तुत करते हैं। यहाँ तक कि प्राणियों का, मनुष्यों का चिंतन और चरित्र तक इस शक्ति-प्रवाह पर आश्रित

रहता है। न केवल सूर्य वरन न्यूनाधिक मात्रा में सौरमंडल के ग्रह-उपग्रह तथा ब्रह्मांड क्षेत्र के सूर्य-तारक भी हमारी सत्ता स्थिरता एवं प्रगति को प्रभावित करते हैं।

विज्ञानी माइकेलसन के अनुसार अमावस्या, पूर्णिमा को पृथ्वी पर पड़ने वाले सूर्य-चंद्र के प्रभावों से प्रभावित होकर न केवल समुद्र में ज्वार-भाटे आते हैं वरन पृथ्वी भी प्रायः नौ इंच फूलती-धँसती है। संसार में विभिन्न समयों पर आए बड़े भूकंपों का इतिहास यह बताता है कि प्रायः अमावस्या, पूर्णिमा के इर्द-गिर्द ही वे आते रहे हैं। अकसर इन्हीं तिथियों में मृगी, उन्माद और कामुक दुर्घटनाओं का दौर आता है। ऐसा कहते हैं कि सूर्य-चंद्र की स्थिति का न केवल मौसम पर वरन मनुष्य शरीर में महत्त्वपूर्ण काम करने पिट्यूटरी, थायोराइड, एड्रीनल आदि हारमोन स्रावी ग्रंथियों पर भी प्रभाव पड़ता है और वे उत्तेजित होकर शरीर एवं मन की स्थिति में असाधारण प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती हैं। दुर्घटना और अपराधों का दौर इन्हीं दिनों कहीं अधिक बढ़ जाता है।

ब्रिटेन के वैज्ञानिक आरनोल्ड मेयर और कौलिस्को के पर्यवेक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि चंद्रमा की स्थिति मनुष्यों को, प्राणधारियों को और वनस्पतियों को प्रभावित करती है। स्वीडन के वैज्ञानिक सेवेंट अहैनियस ने प्रायः दस हजार प्रमाण एकत्रित करके यह सिद्ध किया है कि समुद्र, मौसम, तापमान, विद्युत स्थिति जैसे प्राकृतिक क्षेत्र पर ही नहीं, मनुष्य शरीर एवं मन पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। स्त्रियों के मासिकधर्म पर चंद्रमा की स्थिति का असंदिग्ध प्रभाव पड़ता है। सूर्य ग्रहण और चंद्र ग्रहण को खुली आँखों से देखने की हानि सर्वविदित है। कारण यह है कि इन घड़ियों में उनका संतुलित क्रिया-कलाप लड़खड़ा जाने से ऐसा ही निवारक प्रभाव उत्पन्न होता है, जो आँख जैसे कोमल अंगों को विशेष रूप से क्षतिग्रस्त बना दे।

अमेरिकी खगोलवेत्ता जान हेलरी नेलसन का कथन है कि न केवल सूर्य-चंद्र का वरन सौरमंडल के अन्य ग्रहों का भी पृथ्वी पर प्रभाव पड़ता है और उस आधार पर मौसमी उथल-पुथल एवं प्राणियों की शारीरिक-मानसिक स्थिति में उतार-चढ़ाव आते हैं। धूमकेतु जब उदय होते हैं, तब भी पृथ्वी पर पड़ने वाला अंतरिक्षीय प्रभाव अवरुद्ध होता है और उसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने से तरह-तरह के उपद्रव खड़े होते हैं। शरीरगत रुग्णता और मानसिक आवेशग्रस्तता उन दिनों अधिक बढ़ी-चढ़ी देखी जा सकती है। यह इस बात का प्रतीक है कि विराट ब्रह्मांड परमात्मा का ही विराट शरीर है।

मनुष्य शरीर में किसी भी भाग पर आघात या चोट पहुँचती है तो उससे देह का रोम-रोम काँप उठता है। पाँव की उँगली में चोट लगे तो मस्तिष्क भी उद्विग्न हो उठता है, हाथ भी काम करने से इनकार कर देते हैं। कहने का अर्थ यह है कि शरीर का अंग-अंग प्रभावित होता है। शरीर की चैतन्यता का यह एक चिन्ह है। दृश्य और अदृश्य प्रकृति, समूचा ब्रह्मांड भी इसी प्रकार एक चेतन पिंड है, जिसमें किसी भी छोर पर कुछ घटित होता है, तो अन्यान्य स्थानों पर भी उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। वैज्ञानिक खोजों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका है कि जिसे हम जड़ समझते हैं, वह वस्तुत: जड़ है नहीं, चेतना उसमें भी विद्यमान है और संसार में घटने वाले घटनाक्रमों से लेकर प्राकृतिक हलचलों का भी उस पर प्रभाव पड़ता है।

व्यक्ति का निर्वाह और विकास जिस प्रकार समाज पर आश्रित है तथा उससे अविच्छिन्न रूप से संबद्ध है ठीक इसी प्रकार व्यष्टि चेतना या व्यष्टि मस्तिष्क भी स्वतंत्र दिखाई भले ही दे, वह समष्टि चेतना का ही एक अंग है। लोकरुचि और लोकमान्यताओं के बदलते

रहने का भी यही कारण है। लोगों का चिंतन प्रवाह अपने में प्राय: एक ही दिशा में होता है। मनस्वी और स्वतंत्र चिंतक हर समय अपवादस्वरूप हुए हैं, परंतु सामान्यत: लोकचिंतन के प्रवाह की धारा एक ही दिशा में बहती है। युद्ध और शांति के दिनों में इस तथ्य को बड़ी आसानी से साकार हुआ देखा जा सकता है। अपने समय में पूर्वजों के कथन को प्रामाणिक मान लेने की श्रद्धा अब उखड़ रही है तथा तर्क और प्रमाणों पर आधारित बुद्धिवाद को मान्यता मिली है। किसी जमाने में त्याग, बलिदान और आदर्शवादिता अपनाने में एकदूसरे के बीच प्रतिस्पर्द्धा चलती थी और इस क्षेत्र में जो जितना सफल होता था, वह उतना ही गौरव अनुभव करता था। अब उससे सर्वथा भिन्न स्थिति है। इस समय विलासिता की धूम है। संग्रह, उपभोग और पद-प्रदर्शन के प्रलोभन का भूत हर मस्तिष्क पर छाया हुआ है। इसी प्रवाह को लोकमानस कहा जा सकता है। समय-समय पर कई तरह के फैशन, कई तरह के व्यसन और कई तरह की परंपराएँ बनती हैं तथा कालांतर में उनका स्थान नए फैशन, नए व्यसन और नए प्रचलन ले लेते हैं। जन सामान्य इस प्रवाह में अनजाने ही बहने लगते हैं।

ब्रह्मांडीय चेतना के अस्तित्व और उसके व्यक्ति चेतना के साथ संबंधों व आदान-प्रदान की बात अब दिनोंदिन स्पष्ट होती जा रही है तथा उसे प्रामाणिक माना जा रहा है। मनुष्य के अचेतन मन को अत्यधिक अदभुत और रहस्यमय होने की बात तथ्य रूप में स्वीकार कर ली गई है। चेतन मन की बुद्धिक्षमता उसकी तुलना में अति तुच्छ है। इसी प्रकार अंतरिक्ष में मनुष्यों के छोड़े हुए विचार और उनके आदान-प्रदान की जानकारी भी ऐसी ही उथली और कम महत्त्व की समझी जाने लगी है तथा रहस्यमय उस प्रवाह को माना जाने लगा है जो समष्टि को अचेतन चेतना से संबद्ध है।

मोटेतौर पर मानवीय चेतना शरीर निर्वाह एवं अहंता की तुष्टि तथा उसके विस्तार में ही संलग्न दिखाई देती है। उसकी हलचलों का प्रयोजन केवल मात्र शरीर को सुखी तथा सक्रिय बनाए रखना भर ही प्रतीत होता है। लगता है कि शरीर मुख्य है तथा उसकी तृप्ति, पुष्टि, सुरक्षा एवं प्रगति के लिए संरजाम जुटाने भर के लिए उसका सृजन एवं उदय हुआ है। आमतौर पर ऐसा ही समझा जाता है और इसी स्तर का उपयोग भी होता है। इतना ही नहीं, यह भी समझा जाता है कि शरीर-सुख के लिए मस्तिष्क का जितना भी उपयोग हो सके, उत्तम है और इसी में उसकी सफलता, सार्थकता भी समझी जाती है।

क्या यह सच है? गहराई में उतरने पर बात कुछ दूसरी ही प्रतीत होती है। मस्तिष्क चेतना के निवास का केंद्रिय शक्तिसंस्थान है। यहाँ ब्रह्मांडीय चेतना के साथ जीव चेतना का मिलन-संगम होता है और उस आदान-प्रदान के आधार पर प्राणिजगत को अनेकानेक सुविधाएँ एवं संवेदनाएँ उपलब्ध होती हैं। यह मस्तिष्कीय केंद्र इतना शक्तिशाली है कि उसके माध्यम से पिंड और ब्रह्मांड की एकता का अनुभव एवं लाभ चमत्कारी रूप में दिखाई देने वाली मात्रा में उपलब्ध किया जा सकता है।

पिंड और ब्रह्मांड के अंतर्संबंधों तथा आदान-प्रदान के क्रम को कई उदाहरणों से समझा जा सकता है। प्रत्यक्षतः हमारी पृथ्वी मोटेतौर पर एकाकी दिखाई देती है। उसकी संपदा एवं हलचल अपनी ही परिधि में अपने लिए ही काम करती दिखाई देती है। बहुत समय तक नक्षत्रविज्ञानी भी ऐसा ही मानते रहे है। यह तो पीछे पता चला कि वह वस्तुतः अंतर्ग्रही आदान-प्रदान पर जीवित है। सूर्य की ऊर्जा का शोषण पृथ्वी पर वातावरण की सृष्टि करता है और इस वातावरण से जिसे ऊर्जा-ईंधन भी कहा जा सकता है, जड़ परमाणुओं और चेतन जीवाणुओं को विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ संपन्न

करने के लिए आवश्यक सामर्थ्य प्रचुरता से उपलब्ध होती है। पृथ्वी इस प्रकार अपनी विशिष्टताओं को बनाए रखने के लिए बहुत कुछ तो सूर्य पर निर्भर करती है। दूर रहते हुए भी सूर्य पृथ्वी को इतना उदार-दुलार देता है कि उसे देखते हुए पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका जैसा संबंध मानने को जी करता है। पृथ्वी भी तो सूर्य का मुँह निहारते रहने और परिक्रमा करते रहने में अपने जीवन की सार्थकता समझती है। वह न केवल सार्थक समझती है वरन सार्थक बनाती है।

सूर्य के अतिरिक्त चंद्रमा का पृथ्वी पर कितना प्रभाव पड़ता है? यह प्रभाव समुद्रतट पर जाकर प्रतिदिन के सामान्य और पूर्णिमा-अमावस्या के ज्वार-भाटे को देखकर सहज ही जाना जा सकता है। उल्लेखनीय है कि चंद्रमा को रसराज कहा गया है। यह संज्ञा अकारण ही नहीं दी गई है। कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष में वनस्पतियों तथा प्राणियों की सरसता में जो घट-बढ़ होती रहती है, उससे पता चलता है कि चंद्रमा न केवल पृथ्वी पर समुद्र को वरन पृथ्वी में विद्यमान समग्र सरसता को भी व्यापक रूप से प्रभावित करता है।

अन्यान्य ग्रहों-उपग्रहों के संबंध में भी यही बात लागू हुई देखी जा सकती है। सौरमंडल के ग्रह-उपग्रह अपने-अपने स्तर के रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े उपहार पृथ्वी के नियमित और अनवरत रूप से भेजते रहते हैं। पृथ्वी भी इन अनुदानों को चुपचाप नहीं ले लेती, बल्कि उनका प्रतिदान चुकाती है। कहा जा सकता है कि वह आदान-प्रदान के सामान्य शिष्टाचार को समझती है और उसी के अनुसार अपने प्रतिदान, प्रत्युपहार का क्रम निर्धारित करती है। इन प्रेषणों का लाभ वे ग्रह भी उसी प्रकार उठाते हैं, जिस प्रकार पृथ्वी उनसे उठाती है।

हमारा विश्व एक विराट शक्ति-सागर है और इसका प्रत्येक घटक एकदूसरे से एक परिवार की तरह संबद्ध है। यह शक्ति-सागर

जड़-चेतन से मिश्रित है। इसमें प्राणियों की सत्ता एक बुलबुले की तरह उठती, अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाती और समयानुसार विलीन हो जाती है। वैज्ञानिकों का प्रतिपादन है कि इस विराट शक्ति-सागर में दो धाराएँ हैं एक धारा भौतिक शक्ति है और दूसरी प्राणिज। ये दोनों शक्तिधाराएँ मिलकर एक युग्म बनाती हैं। विकासमान विज्ञान अब जीवन को रासायनिक संयोग मात्र नहीं मानता। अब विज्ञानी भी मनश्चेतना की मरणोत्तर सत्ता को स्वीकार करने लगा है और चेतना को जगत की एक स्वतंत्र सत्ता मानने की ओर अग्रसर है।

भारतीय मनीषियों ने हजारों वर्षों पूर्व इस सत्य के दर्शन किए थे कि विश्व में जड़ और चेतन की द्विधा शक्ति अपने-अपने नियत प्रयोजनों में संलग्न है। पौराणिक भाषा में इन शक्तियों को परा और अपरा शक्ति के नाम से संबोधित किया गया है। इस शक्ति-सागर का वैभव भी महा समुद्र की तरह ही है, जिसके किनारे बैठकर मनुष्य ने सीप और घोंघे ही ढूँढ़े हैं। प्रकृत परमाणुओं में और जीवाणु घटकों में जो सामर्थ्य चेतना विद्यमान है, उसका बहुत छोटा अंश ही जानना और प्राप्त कर पाना संभव हो सका है। खींच-तान से, छीना-झपटी से सब कुछ पाना संभव नहीं है; वह तो समुद्र में घुस जाने से ही संभव है।

सीमित को असीमित से संबद्ध कर देने पर ही, तुच्छता को महानता से जोड़ देने पर ही असाधारण हुआ जा सकता है और असामान्य विलक्षणताएँ अर्जित की जा सकती हैं। सामान्य स्तर पर चेतना मस्तिष्क के माध्यम से शरीर और उससे संबंधित अनेक प्रयोजनों के बारे में ही सोचती, निर्णय करती और व्यवस्था बनाती है। असामान्य की स्थिति उच्चस्तरीय होती है और उस स्थिति में ब्रह्मांडीय चेतना के आदान-प्रदान की गति तीव्र होती है तथा ऐसी उपलब्धियाँ अर्जित होती हैं जिन्हें विलक्षण और चमत्कारिक ही

कहा जा सकता है। सामान्य जानकारियाँ और सामान्य अनुभव तो इंद्रिय शक्ति के आधार पर ही प्राप्त होते हैं लेकिन यदि प्रसुप्त अतींद्रिय शक्ति को जाग्रत किया जा सके, तो व्यापक ब्रह्मांड के साथ, अपना संपर्क जुड़ सकता है और ससीम से असीम की स्थिति में पहुँचा जा सकता है।

यह संयोग, सम्मिलन, विस्तार या विकास जो भी कहीं एक ही आधार पर हो सकता है—वह आधार है, योग। योग-साधना का प्रयोजन अपनी ससीमता को असीमता के साथ जोड़ देना है। इस प्रयोजन में जो जितना ही सफल होता है, वह उस वैभव पर उतना ही आधिपत्य स्थापित करता चलता है, जिसका प्रभाव जड़-चेतन जगत में अपने चारों ओर फैला हुआ दीख पड़ता है। सीमित रहने से, सीमाबद्ध होने से तो मनुष्य तुच्छ और दरिद्र ही होता है, पर असीम के साथ जुड़ जाने पर महानता प्राप्त करने में कोई कमी नहीं रह जाती। संपन्नता से भरे-पूरे भंडार में अपनी भागीदारी जितनी अधिक होती है, अपनी स्थिति उतनी ही विभूतिवान होती चली जाती है। सिद्धपुरुषों में दिखाई देने वाली विशिष्ट क्षमताएँ और कुछ नहीं विराट के साथ उनकी घनिष्ठता का ही उपहार है। वह स्थिति ऐसी बन जाती है कि उसमें आत्मा और परमात्मा के बीच कोई बहुत बड़ा अतंर नहीं रह जाता, दोनों समतुल्य दिखाई देते हैं। यह है व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना से जोड़ देने का चमत्कार। ❒

# मानवीय तेजोवलय एवं छायापुरुष

जो कुछ आँखों से दिखाई देता है उस स्थूल के परिणाम स्वल्प हैं और प्रभाव सीमित। उससे आगे गहराई में सूक्ष्म तक उतरना आरंभ करते ही बहुमूल्य संपदाएँ उपलब्ध होने लगती हैं। धरती की ऊपरी परत कूड़े-कंकड़ और धूल-मिट्टी से ढकी रहती है, खोदना आरंभ करते ही पानी से लेकर अनेकानेक बहुमूल्य खनिज संपदाएँ मिलती चली जाती हैं। सागर की ऊपरी सतह पर प्रथम तो खारे पानी के अलावा कुछ मिलता ही नहीं, मिलता भी है तो काई और कचरे से भिन्न नहीं होता। पर गहराई में तलहटी तक जाने वाले गोताखोर उसमें से बहुमूल्य मोती, मूँगा और रत्न-संपदा बटोर लाते हैं।

ये तो हुईं स्थूल विशेषताएँ। प्रभाव की दृष्टि से भी स्थूल की शक्ति-सामर्थ्य सीमित ही है। मिर्च खाने वाले का मुँह ही जलाती है, अन्य औरों पर उसका कोई असर नहीं पड़ता परंतु वही मिर्च जलकर वायुभूत होती है तो आस-पास कई वर्ग मीटर के क्षेत्र में बैठे लोगों की नाक में छींक और सिर में दरद पैदा कर देती है। होम्योपैथी जैसी निरापद और स्थायी प्रभाव डालने वाली चिकित्सा पद्धति का आधार दर्शन भी सूक्ष्मपरक है। होम्योपैथी इसी विज्ञान पर आधारित है कि वस्तु जितनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती जाएगी उतनी ही गुणकारी होती जाएगी। इसीलिए मूल औषधि के हजारवें-लाखवें हिस्से तक उसका विभाजन किया जाता है और वह परिणाम में उतनी ही गुणकारी होती है।

कील दो वस्तुओं को जोड़ने में ही काम आती है। ज्यादा से ज्यादा उससे दीवार में गड्ढा किया जा सकता है अथवा किसी के चुभ जाने पर छोटा सा घाव भर हो सकता है। पर उसका अरब-

खरब का भी अरब-खरबवाँ भाग परमाणु लाखों मनुष्यों को मारने, पहाड़ों को मिटाकर खाई बनाने और बड़े-बड़े राकेट चलाने, बिजली पैदा करने में समर्थ होता है जिसे परमाणु शक्ति कहा जा सकता है। कील के उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग की, जिसे परमाणु की सीमा रेखा में भी बाँधना संभव नहीं है, अंतनिर्हित ऊर्जा का केंद्रीकरण किया जा सके और ध्वंस कृत्य में लगाया जा सके तो उतने से ही इस समस्त भूमंडल का विनाश हो सकता है। स्मरणीय है कि अब तक किए जाने वाले परमाणु विस्फोटों में विस्फोट से उत्पन्न होने वाली परमाणु ऊर्जा का एक सीमित अंश ही प्रयुक्त हो सका है। अधिकांश तो तत्काल अंतरिक्ष में विलीन हो जाता है। इस शक्ति का सृजनात्मक प्रयोग भी इतना व्यापक, प्रभावोत्पादक और शक्तिशाली है कि उससे उतनी ही गरमी मिल सकती है जितनी कि सूर्य से प्राप्त हो सकती है।

अब तक जड़ पदार्थों की सूक्ष्म सामर्थ्य का ही विवेचन किया गया। चेतन की सूक्ष्म सामर्थ्य उससे असंख्य गुना सामर्थ्यवान है। भारतीय ऋषियों ने आरंभ से ही गाया है—'**अणोरणीयान महतो महीयान आत्मा गुह्यायां विहितो सृजन्तो।**' परंतु इस तथ्य को कुछ वर्ष पूर्व तक कल्पना की उड़ान और वायवीय दर्शन भर समझा जाता था, परंतु परामनोविज्ञान की अधुनातन शोधें इसी निष्कर्ष बिंदु पर पहुँच रही हैं कि अदृश्य अति सूक्ष्म चेतनसत्ता की सामर्थ्य कल्पना तथा अनुमान से परे है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वालकालियर ने कहा है कि भौतिक शास्त्र और जीवशास्त्र के क्षेत्र में आने वाले स्थूलशरीर के अतिरिक्त जीवधारियों का एक सूक्ष्मशरीर भी है, जो अलौकिक क्षमताओं से भरा पड़ा है। यह शरीर मृत्यु के बाद भी बना रहता है। जीवित

अवस्था में भी इसे देखा, मापा व अंकित किया जा सकता है। इस पर्यवेक्षण से शरीर की प्रतिरूप इस सूक्ष्मशरीर की जानकारी वैज्ञानिकों को मिली है, जिससे ब्राह्मी चेतना के इस व्यष्टि घटक मनुष्य के अनेक रहस्यमय पक्ष उजागर हुए हैं।

मनुष्य शरीर का जितना दृश्यमान रूप चर्म चक्षुओं से बाहर दिखाई पड़ता है, उससे कहीं अधिक प्रखर तेजोमय उसके सूक्ष्मशरीर का ढांचा होता है, जिसे दिव्यदर्शी सिद्धि संपन्न साधक ही देख पाते हैं अथवा दृश्य रूप देने के योग्य विकसित कर पाते हैं। इस सूक्ष्म तेजोमंडल को जो शरीर के चारों ओर एक आवरण के रूप में छाया होता है, मापदंड बनाकर द्रष्टा-मनीषीगण किसी साधक की साधना के विकास का अनुमान लगाते हैं। यह प्रकाशमंडल कई नामों से जाना जाता है। कोई इसे आभामंडल, तेजोवलय, ऑरा नाम से जानता है। जबकि कोई सूक्ष्मशरीर प्राणमयकोश अथवा ईथरीक बॉडी इथरीक डबल नाम देते हैं। यह केवल मनुष्य के आस-पास ही विद्यमान होता हो, यह बात भी नहीं। इसे वृक्ष-वनस्पतियों, पत्तियों, जीव-जंतुओं एवं वातावरण विशेष के चारों ओर भी देखा जाता है। यह विधेयात्मक, आकर्षण का गुण रखने वाला भी हो सकता है एवं निषेधात्मक; जुगुप्सा पैदा कर भय की मन:स्थिति बनाने वाला भी हो सकता है। दोनों ही स्थितियों में यह तो प्रमाणित होता ही है कि सूक्ष्मशरीर का अस्तित्व किसी न किसी रूप में होता ही है। भले ही उसे हर व्यक्ति अपने चर्म चक्षुओं से देख न सके, पर उसका अस्तित्व असंदिग्ध है। वातावरण विशेष के निर्माण में भी इसकी महती भूमिका होती है।

श्मशानों में कई बार धुँधले प्रकाश की गोलियाँ, लहरें अथवा धुँध उड़ती देखी जाती है। शरीर के जल जाने पर मृत व्यक्ति का

तेजोवलय किसी रूप में विद्यमान बना रह सकता है। कब्र में गाड़े गए व्यक्ति की लाश सड़ जाने पर भी उसका तेजोवलय उस क्षेत्र में उड़ता रह सकता है। इसे कभी-कभी आँखों से देखा जाता है और कभी उधर से निकलने वालों को रोमांच, कँपकँपी, धड़कन के रूप में इसका असुखद अनुभव होता है और वहाँ से जल्दी भाग जाने की इच्छा होती है। ऐसी अनुभूतियाँ भय और आशंका का भी कारण हो सकती हैं। पर कितनी ही बार पूर्ण निर्भय और मरणोत्तर सत्ता को अस्वीकार करने वाले व्यक्ति भी उस तरह की अनुभूति करते हैं और कहते हैं कि उन्हें उस क्षेत्र में कुछ अदृश्य हलचल का आभास होता है।

मरघट में तांत्रिक साधनाएँ करने, कापालिकों के मृतकों की खोपड़ी को साफ करने, उससे जल पीने जैसी अघोर क्रियाओं के पीछे मृतकों की अवशिष्ट वलय ऊर्जा का उपयोग करने का सिद्धांत ही कार्यान्वित होता है। तंत्र साधना में साधक न केवल अपने ही मनोबल का उपयोग करते हैं वरन किन्हीं अन्यों के शरीरों की ऊर्जा का दोहन भी करते हैं। पशुबलि जैसे घृणित कर्म इसी स्तर का लाभ उठाने के लिए किए जाते हैं।

पुराने जमाने में जब तलवारों से लड़ाइयाँ लड़ी जाती थीं, कटे हुए सिर वाले धड़ उठ खड़े होते थे और हाथ में लगी तलवारों को हवा में चलाते थे। इसी प्रकार कटे हुए सिर भी उछलते देखे गए हैं। यह इसका प्रमाण है कि कानूनी मृत्यु के बाद भी किसी रूप में देर तक जीवन बना रहता है। मरणोपरांत भी क्रिया-कलाप चलाते रहने वाली इस सत्ता को आत्मवादी तेजोवलय ही मानते रहते हैं।

वस्त्रों तथा अन्य उपयोग में आने वाली वस्तुओं के बारे में भी यही बात है। भली या बुरी प्रकृति के मनुष्य उन वस्तुओं पर अपना

प्रभाव अधिक छोड़ते हैं जिन्हें वे अधिक रुचिपूर्वक प्रयोग करते हैं। सच्चे साधु-संतों की माला, जनेऊ, खड़ाऊँ, लँगोटी आदि को कई व्यक्ति उपहार आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं और उनके प्रभाव से देर तक लाभान्वित होते रहते हैं। कलम, घड़ी, अँगूठी, बटन जैसी वस्तुओं का भी ऐसा ही महत्त्व है। भगवान बुद्ध का एक दाँत लंका में सुरक्षित है। हजरत मुहम्मद साहब का एक बाल कश्मीर की किसी मसजिद में रखा है। शरीर के साथ जुड़े हुए अवयव, बाल या नाखून अपना महत्त्व रखते हैं। उनके माध्यम से तांत्रिक लोग भले-बुरे प्रयोग करते पाए जाते हैं।

व्यक्तित्व पर तेजोवलय की भारी छाप रहती है। प्राय: यह जन्म-जन्मांतरों के अभ्यास, प्रयास एवं संस्कार के आधार पर विनिर्मित होता है पर मनुष्य अपनी स्वतंत्र चेतना का उपयोग करके उसे बदल भी सकता है। सामान्य स्तर के लोग इस बने-बनाए तेजोवलय के अनुसार अपना स्वभाव और कर्म बनाए रहते हैं। पर मनस्वी लोग अपनी सुदृढ़ संकल्प शक्ति से अपनी अभ्यस्त आंतरिक एवं बाह्य स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन भी कर सकते हैं। तब विनिर्मित तेजोवलय में भी वैसा ही परिवर्तन हो जाता है। उसके रंगों में कंपनों के जाल में इस परिवर्तन का हेर-फेर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। सुकरात कहते हैं—प्रकृतित: मैं कुख्यात हत्यारा ही हो सकता था, पर मैने प्रयत्नपूर्वक अपने को बदलने में सफलता प्राप्त की।

शारीरिक और मानसिक स्थिति के अनुरूप तेजोवलय की स्थिरता बनती है। यदि स्थिति बदलने लगे तो प्रकाशपुंज की स्थिति भी बदल जाएगी। इतना ही नहीं, समय-समय पर मनुष्य के बदलते हुए स्वभाव तथा चिंतन स्तर के अनुरूप उसमें सामयिक परिवर्तन

होते रहते हैं। सूक्ष्मदर्शी उसकी भिन्नताओं को रंग बदलते हुए परिवर्तनों के रूप में देख सकते हैं।

ताप का मोटा नियम है कि अधिक ताप अपने संस्पर्श में आने वाले न्यून ताप उपकरण की ओर दौड़ जाता है। एक गरम, दूसरा ठंढा लोहखंड सटाकर रखे जाएँ तो ठंढा गरम होने लगेगा और गरम ठंढा। वे परस्पर अपने शीत-ताप का आदान-प्रदान करेंगे और समान स्थिति में पहुँचने का प्रयत्न करेंगे।

बिजली की भी यही गति है। प्रवाह वाले तार को स्पर्श करते ही सारे संबंध क्षेत्र में बिजली दौड़ जाएगी। उसकी सामर्थ्य उस क्षेत्र में बँटती जाएगी। प्राणविद्युत का प्रभाव भी शीत-ताप के सान्निध्य जैसा ही होता है। प्राणवान व्यक्ति दुर्बल प्राणों को अपना बल ही नहीं स्तर भी प्रदान करते हैं। ऋषियों के आश्रमों में सिंह और गाय के प्रेमपूर्वक निवास करने का तथ्य इसीलिए देखा जाता था कि प्राणवान अपनी सदभावना से उन पशुओं को भी प्रभावित कर देते थे। बिजली लोहे, सोने, संत, कसाई में कोई भेद नहीं करती वह सब पर अपनी प्रभाव समान दिखाती है। जो भी उससे जैसा भी काम लेना चाहे, वैसा करने में उसकी सहायता करती है।

आग जिस कमरे में जलती है, वह पूरा का पूरा गरम हो जाता है। आग रहती तो ईंधन की सीमा में ही है पर उसकी गरमी और रोशनी दूर-दूर तर फैलती है। सूरज बहुत दूर होते हुए भी धरती तक अपना प्रकाश और ताप पहुँचाता है। बादलों की गर्जना दूर-दूर तक सुनाई पड़ती है। प्राणवान व्यक्ति अपने प्रचंड व्यक्तित्व का प्रभाव सुदूर क्षेत्रों तक पहुँचाते हैं और व्यक्तित्वों को ही नहीं परिस्थितियों को भी बदलते हैं। वातावरण उनसे प्रभावित होता है। यह प्रभाव उत्पन्न करने वाली क्षमता प्राणशक्ति ही है भले ही वह किसी भी

रूप में काम कर रही हो। वह देव और दैत्य दोनों स्तर की हो सकती है। उसके अनुचित प्रयोग में वैसा ही विनाश भी होता है जैसे कि उचित प्रक्रिया से सत्परिणाम उत्पन्न होते हैं।

स्थिर तालाब के जल में जब किसी मिट्टी के ढेले या कंकड़ को फेंकते हैं, तो उसमें लहरें उठने लगती हैं। पत्थर के भार व फेंकने की गति के अनुरूप ही लहरों का उठना, तेज व सुस्त गति से होता है। ठीक इसी प्रकार हमारी इच्छाएँ क्या हैं ? ये हमारी शारीरिक चेष्टाएँ, चेहरे के हाव-भाव बताते रहते हैं। व्यभिचारी व्यक्ति की आँखों से हर क्षण निर्लज्जता के भाव परिलक्षित होंगे। चेहरे का डरावनापन अपने आप व्यक्त कर देता है कि यह व्यक्ति चोर, डाकू, बदमाश है। कसाई की दुर्गंध से ही गाय यह पहचान लेती है कि वह वध करना चाहता है।

इसी प्रकार सदाचारी, दयाशील व्यक्तियों के चेहरे से सौम्यता का ऐसा माधुर्य टपकता है कि देखने वाले अनायास ही उनकी ओर खिंच जाते हैं। विचारयुक्त व गंभीर मुखाकृति बता देती है कि यह व्यक्ति विद्वान, चिंतनशील व दार्शनिक है। प्रेम व आत्मीयता की भावना से हम चाहे किसी जीव-जंतु को देखें, वह भयभीत न होकर हमारे उदार भाव की अंतर मन से प्रशंसा करने लगेगा।

'फिजीकल फेनामेना आफ मिस्टिसिज्म' ग्रंथ के लेखक हरबर्ट थर्स्टन ने अपनी खोजों में ऐसे ईसाई संतों का विवरण छापा है, जिनके चेहरे पर लंबे उपवास के उपरांत दीप्तिमान, तेजोवलय देखे गए। उन्होंने अन्नामोनारो का विवरण विशेष रूप से लिखा, जिनके शरीर में उपवास के उपरांत सल्फाइडों की असाधारण वृद्धि हो गई थी। अल्ट्रावायेलट तरंगें अधिक बहने लगी थीं जिनका आभास दीप्तिमान चक्र के रूप में होता था। विद्वान थर्स्टन ने भी अपने

विवरण में ऐसे ही कई दीप्तिमान संतों की चर्चा की है और उनकी विद्युतीय स्थिति में असामान्यता होने का उल्लेख किया है।

चरण स्पर्श करने की प्रथा के पीछे यही रहस्य है कि तेजस्वी व्यक्ति के शरीर का स्पर्श करके उनके शरीर विद्युत का एक अंश ग्रहण किया जाए। अधिक सामर्थ्यवानों का लाभ स्वल्प सामर्थ्यवानों को मिलने में शरीर स्पर्श की प्रक्रिया बहुत कारगर होती है। गुरुजनों के स्नेह से छोटों के सिर पर हाथ फिराना, पीठ थपथपाना जैसा वात्सल्य प्रदर्शन यों भावनात्मक ही दीखता है, पर इसमें भी वह विद्युत संचार की क्रिया सम्मिलित है। इस प्रकार बड़े अपने से छोटों को महत्त्वपूर्ण अनुदान देते रहते हैं।

इस प्रकार मनुष्य के चारों ओर जो तेजोवलय छाया रहता है, उसमें विद्युत कण, चुंबकत्व, रेडियो विकिरण युक्त चेतन ऊर्जा भरी रहती है। इसे यंत्रों से भी जाना व नापा जा सकता है और समीपवर्ती लोग इसे अपने शरीर और मन पर पड़ने वाले अदृश्य प्रभाव के आधार पर अनुभव कर सकते हैं।

मानवीय विद्युत आकर्षण, ह्यूमन मैग्नेटिज्म का संयुक्त स्वरूप प्राण है। उसे विश्वव्यापी महाप्राण का एक अंश भी कहा जा सकता है। क्योंकि भौतिक जगत में और चेतन संवेदनाओं में जो कुछ स्फुरणा रहती है, उसका समन्वित समीकरण मानवीय प्राणसत्ता में देखा जा सकता है।

'प्रोजेक्शन आफ ऐस्ट्रल बाडी' के लेखक ने बताया है कि शरीर की स्थूल रचना अपने आप में अदभुत है। पर यदि उसके भीतर काम कर रहे विद्युत शरीर की क्रिया-प्रक्रिया को जाना जा सके, तो प्रतीत होगा कि उसमें सूर्य से तथा अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों से धरती पर आने वाली ज्ञात और अविज्ञात किरणों का भरपूर समन्वय

विद्यमान है। गामा, वीटा एक्स, लेसर, अल्ट्रा वायेलट, अल्फा वायेलट आदि जितने भी स्तर की शक्ति किरणें भूमंडल में भीतर और बाहर काम करती हैं, उन सबका समुचित समावेश मनुष्य के सूक्ष्मशरीर में हुआ है। स्थूलशरीर जड़ पदार्थों के बंधनों से बँधा होने कारण ससीम है, पर सूक्ष्मशरीर की संभावनाओं का कोई अंत नहीं। उसका निर्माण ऐसी इकाईयों से हुआ है जिनकी हलचलें ही इस ब्रह्मांड में विविधविध क्रिया-कलाप उत्पन्न कर रहीं हैं। जीवनतत्त्ववेत्ता ई० के० लैंकास्टर ने अधिक गहराई तक जीवनतत्त्व की खोज करने के उपरांत उसे भौतिक जगत में चल रही समस्त क्रिया-प्रक्रियाओं से भिन्न स्तर का पाया है।

एक अन्य प्रख्यात वैज्ञानिक जर्मनी के प्रो० विलहेमरीच भी प्राण के अस्तित्व में भारतीय सिद्धांत का मानवीय देह की एक प्रतिकृति के अस्तित्व के रूप में समर्थन करते हैं। वे इसे आर्गोन कहते हैं, यानी एक जैव विद्युतीय शक्ति जो नीले रंग की है।

सोवियत खोज को अमेरिकन वैज्ञानिकों के सामने प्रस्तुत करते हुए, शीला ऑस्ट्रेंडर तथा लिन श्रोडर ने लिखा है, "सोवियतों को साक्ष्य मिल गया प्रतीत होता है कि समस्त जीवधारियों में शक्ति का कोई साँचा, एक प्रकार का अदृश्य शरीर अथवा भौतिक शरीर को परिवृत करने वाला कोई प्रकाश पिंड होता है।" (साइकिक डिसकवरीज बिहाइंड आयरन करटेन' से उद्धृत)

## सूक्ष्मशरीर की सत्ता एवं वैज्ञानिक महत्ता

दृश्यमान स्थूल काया की गतिविधियाँ सूक्ष्म के स्पंदन से संचालित होती हैं। पदार्थ जगत के वैज्ञानिक शरीर की सूक्ष्म संरचना के विषय में कुछ बता पाने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं, तो उसका कारण यही है कि उनकी प्रत्यक्षवादी दृष्टि उस गहराई तक नहीं

जाती, जो क्रिया-कलापों का मर्म समझने के लिए अभीष्ट है। जब तक न्यूट्रीनो आदि कणों एवं क्वार्क, पल्सार्ज की जानकारी नहीं मिली थी, पदार्थ संबंधी जानकारी विज्ञान समुदाय की सीमाबद्ध ही थी। किंतु अनुमान एवं कल्पना शक्ति के सहारे वे उन सूक्ष्मतम कणों को खोज सकने अथवा उनका प्रतिपादन कर सकने में समर्थ हुए, जिन्हें प्रकाश की गति से तेज चलने वाले अणु-परमाणु के मूल घटक एवं चार मूल बलों के एकीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम माना जाता है। लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता है कि ये अंतिम (एब्साल्यूट) ही हैं। हो सकता है कि इनसे भी सूक्ष्म कोई कणों की दुनिया हो, जो जड़ व चेतन दोनों के मूल में कार्य करती हो, वह एक ही हो एवं स्थिति-परिस्थिति के अनुसार रूप बदलती रहती हो।

मानवी मस्तिष्क की स्थिति जीवनयापन के सामान्य क्रिया-कलाप पूरे करने जितनी सीमित नहीं है। अपितु उसमें एक से एक विलक्षणताएँ, संभावनाएँ प्रतीत होती हैं। वैज्ञानिक परमाणु में भार घनत्व, विस्फुटन तथा चुंबकीय क्षेत्र आदि भौतिक परिचय देने वाले तत्त्वों की खोज करते हुए एक ऐसे सूक्ष्म विद्युतीय कण के संपर्क में आए हैं, जिनमें भौतिक परमाणु में पाए जाने वाले उपरोक्त एक भी लक्षण नहीं। ये विद्युत कण शरीरों के पोले भाग तथा समस्त आकाश में निर्बाध विचरण करते हैं। ये भौतिक परमाणुओं को भी बेधकर पार निकल जाते हैं, पर अभी तक कोई ऐसी यंत्र प्रणाली या विज्ञान विकसित नहीं हो पाया जो इन विद्युत कणों को कैद कर सके। जब तक वह पकड़ में न आए, उनकी अंत:संरचना का अध्ययन कैसे हो?

इन कणों की उपस्थिति का बोध भी उन्हीं के परस्पर टकराव की स्थिति में ही हो पाता है। गणितशास्त्री एड्रियाँ ड्राब्स ने इनको

'न्यूट्रिनो' नाम दिया है। कुछ वैज्ञानिकों ने इसी तरह के कणों को साइकोन नाम दिया है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जब मस्तिष्क के स्नायुकोश 'न्यूरोन्स' विचारों और भावनाओं के प्रवाह के रूप में इन कणों से संपर्क स्थापित करते हैं, तो उस क्षणिक संपर्क से ही पूर्वाभास जैसी घटनाओं की अनुभूति होती है। इससे दो सत्य उदघाटित होते हैं—(१) पहला यह कि ब्रह्मांडव्यापी घटनाओं का मूल उदगम एक है जो कि उदगम काल, दिशा और पदार्थ से अतीत है। संसार का नियमन और नियंत्रण इसी के अधिकार में है। (२) मानवीय चेतना का संबंध किसी न किसी रूप में इस उदगम से निश्चित है।

सूक्ष्मतम इन न्यूट्रिनो कणों का मनुष्य की मस्तिष्कीय चेतना तथा तंतु समूह पर क्या और किस तरह का प्रभाव पड़ता है, इस पर गंभीर शोधें चल रही हैं। वैज्ञानिक एक्सेल फरसेफि का कथन है कि ये कण जब मानसिक चेतना पर प्रभाव डालते हैं, तो नई जाति के 'माइंजेन' नामक ऊर्जा कणों का जन्म होता है। यह अनुमान है कि इस तत्त्व की व्यापक प्रक्रिया मस्तिष्क में चल पड़े, तो मनुष्य सहज ही ब्रह्मांडव्यापी ऊर्जा के साथ संबंध स्थापित करने लगेगा और अपनी ज्ञान-परिधि को इतना असीम बना लेगा कि उसकी कल्पना करना भी कठिन हो। इन ऊर्जा कणों को सूक्ष्म में संव्याप्त लीला जगत का एक घटक माना जा सकता है, जो सूक्ष्मशरीर की सारी गतिविधियों यथा अतींद्रिय सामर्थ्य, विचार-संप्रेषण, सम्मोहन प्रभामंडल की प्रभाव-सामर्थ्य के लिए उत्तरदायी होता है।

भारतीय योगियों की सूक्ष्म दृष्टि भी वैज्ञानिकों की तरह ही रही है और उन्होंने सत्ता के नाभिक की जानकारी काफी पूर्व प्राप्त कर ली थी। पदार्थ का परमाणु हमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सत्ता की शक्ति

की अनुभूति तो कराता है, पर वह चेतनसत्ता की जानकारी नहीं देता। भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने भी ऐसे ही चेतन परमाणु और उसके विभु नाभिक का पता लगाया एवं उसे चेतनसत्ता, आत्मा या ईश्वरीय प्रकाश के रूप में माना था और उसकी विस्तृत खोज कर उसे आत्माणु नाम दिया था।

इस सभी प्रतिपादनों से निष्कर्ष एक ही निकलता है कि वह है स्थूलशरीर से परे मनुष्य का एक और भिन्न सूक्ष्मशरीर का अस्तित्व। स्थूलशरीर की इकाई है, 'प्रोटोप्लाज्म'। इस सूक्ष्मशरीर की इकाई क्या है—यह अन्वेषण का विषय है किंतु यह तथ्य निर्विवाद है कि शरीर में एक और शरीर जिसे भारतीय तत्त्वदर्शन सूक्ष्मशरीर कहते हैं का निवास है। यह कहीं अधिक समर्थ और चमत्कारी है। सच तो यह है कि स्थूलशरीर के सारे क्रिया-कलाप उसी के द्वारा संचालित होते हैं। उसके दुकान बंद करते ही स्थूलशरीर की तिजारत हमेशा के लिए बंद हो जाती है।

मानव शरीर के इर्द-गिर्द छाए रहने वाले प्रभामंडल के संबंध में परामनोविज्ञानी महिला एलीन गैरेट की पुस्तक 'अवेयरनेस' में अनेक शोध विवरण छपे हैं जिसमें उन्होंने शरीर के इर्द-गिर्द एक विद्युतीय कुहरे का चित्रांकन किया है। वे इस कुहरे के रंगों एवं उभारों में होते रहने वाले परिवर्तनों को विचारों के उतार-चढ़ाव का परिणाम मानती हैं। इस प्रभामंडल के चित्र सोवियत विज्ञानी डॉ० किलनर ने भी उतारे हैं और उनमें परिवर्तन होते रहने की बात कही है। इन प्रभा प्रतिवर्तनों को मात्र विचारों का ही नहीं, शारीरिक स्वास्थ्य का प्रतीक भी माना गया और उसके आधार पर शरीर के अंतराल में छिपे हुए रोगों के कारण भी परखे गए। इस प्रकार के परीक्षणों में मास्को मेडीकल इन्स्टीटयूट के अध्यक्ष पावलेव कोश ने

विशेष ख्याति प्राप्त की है और उन्होंने रोग निदान के लिए प्रभामंडल के अध्ययन को बहुत उपयोगी माना है।

इस प्रभामंडल को प्रत्यक्ष सूक्ष्मशरीर की संज्ञा दी गई है। उसका वैज्ञानिक नामकरण 'दी बायलोजिकल प्लाज्मा बॉडी' किया गया है। कजाकिस्तान के किरोव विश्वविद्यालय की शोधों में कहा गया है कि प्रभामंडल के ऊर्जा शरीर को उत्तेजित विद्युत अणुओं का समूह मानने में हर्ज नहीं, पर उसमें इतना और जोड़ा जाना चाहिए कि उसमें जीवाणुओं का भी अस्तित्व है। साथ ही उसकी सत्ता मिश्रित होने पर एक व्यवस्थित एवं स्वचालित इकाई है। उसमें अपनी उत्पादन, परिग्रहण एवं परिप्रेक्षण क्षमता मौजूद है।

'बायोलाजिकल प्लाज्मा बॉडी' के संबंध में यह बताया गया है कि यह केवल उत्तेजित विद्युत अणुओं से बने प्रारंभिक जीवाणुओं के समूह का योग भर नहीं है वरन एक व्यवस्थित तथा स्वचालित घटक है, जो अपना स्वयं का चुंबकीय क्षेत्र निस्सृत करता है।

वैज्ञानिकों ने इस संबंध में कई प्रयोग किए हैं और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बायोप्लाज्मा का मूल स्थान मस्तिष्क है और यह तत्त्व मस्तिष्क में ही सर्वाधिक सघन अवस्था में पाया जाता है तथा सुषुम्ना नाड़ी और स्नायविक कोशिकाओं में सर्वाधिक सक्रिय रहता है। वस्तुतः मानवीय काया में मात्र रक्त-मांस ही नहीं होता, उसमें विद्युत शक्ति भी होती है। इसके भी दो भाग हैं एक वह जो हृदय और मस्तिष्क से विनिर्मित होकर नाड़ी संस्थान का संचालन करती है। दूसरी वह जो निखिल ब्रह्मांड में संव्याप्त रहते हुए प्रत्येक शरीरधारी, वनस्पति एवं पदार्थ को प्रभावित करती है। दोनों के सम्मिश्रण से जो विद्युत बनती है, उसी को वैज्ञानिक देख या समझ पाते हैं। उसी आधार पर किसी की स्थिति का संश्लेषण करते हैं।

वैज्ञानिक तेजोवलय विशुद्धतः भौतिक होता है। वही यंत्रगम्य है। आध्यात्मिक प्रभामंडल मशीनों से नहीं देखा जा सकता उसे ज्ञान-चक्षुओं से ही ध्यानयोग के द्वारा देखा जा सकता है।

यह तेजोवलय चेहरे पर सबसे अधिक मात्रा में पाया गया है। देवताओं के चित्रों में उनके चेहरे के आस-पास सूर्य जैसा चमकदार एक घेरा चित्रित किया जाता है। वह उसी अदृश्य तेजोवलय का चित्रण है। आँखों से इसकी लपटें उठती रहती हैं, जीभ भी जब शब्दोच्चार करती है विशेषतया किसी भावावेश में तब भी इस तेजस के स्फुलिंग उड़ते देखे जा सकते हैं। ज्ञानेंद्रियों का जमघट तथा मस्तिष्क का विद्युत भंडार एक ही जगह है इसलिए चेहरा सबसे अधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली रहता है। मोटेतौर पर चेहरे को देखकर दूसरे लोग बहुत कुछ जानने-समझने में सफल होते हैं। आकृति देखकर मनुष्य की पहचान करने वाले सूक्ष्मदर्शी नाक, कान आदि की बनावट को नहीं वरन चेहरे के इर्द-गिर्द, उमड़ते-घुमड़ते तेजोवलय को ही परखते हैं और उसी के आधार पर व्यक्ति के आंतरिक व्यक्तित्व का प्रभाव-परिचय प्राप्त करते हैं।

चेहरे की ही तरह तेजोवलय का एक केंद्र जननेंद्रिय क्षेत्र में छाता रहता है। पर चूँकि उसमें प्रजनन संबंधी आकर्षण अधिक रहता है, इसलिए इस वलय का प्रभाव यौन आकर्षण उत्पन्न करने वाला होता है। भिन्न लिंग की समीपता ही उस वलय में अधिक उभार करती है। समलिंग की समीपता में वह तेजस उत्तेजित नहीं होता। इन अड़चनों को देखते हुए ही कटि क्षेत्र को ढका रखा जाता है। विद्युत प्रवाह की दृष्टि से वहाँ भी चेहरे की अपेक्षा मात्रा कम नहीं होती। पर उपरोक्त बाधाओं ने उसे सीमित प्रयोजन के लिए ही उपयोगी रहने दिया है। दांपत्य स्तर पर भी उसका लाभ मिलता है।

इस असुविधा के कारण ही उसे ढका हुआ केवल प्रणय-प्रयोजन के लिए ही सीमित अवरुद्ध किया गया है। यदि यह दोष न होता तो यह तेजोवलय चेहरे पर छाए रहने वाले तेजोवलय से न्यून नहीं अधिक ही प्रभावशाली सिद्ध होता। चेहरे का तेजोवलय इस प्रकार के बंधन प्रतिबंध से मुक्त है। वह जैसा भी बुरा-भला होगा अपने निकटवर्ती क्षेत्र को संपर्क में आने वाले व्यक्तियों तथा स्पर्श-व्यवहार में आने वाले पदार्थों को प्रभावित करता है। जिस प्रकार जीवाणु एक से दूसरे शरीर में प्रवेश करते रहते हैं उसी प्रकार यह तेजोवलय विद्युत मंडल समीपवर्ती क्षेत्र में अपनी मानसिक एवं आत्मिक स्थिति का प्रकाश-प्रभाव फैलाता रहता है।

चुंबक का स्पर्श करने से साधारण लोहे में भी चुंबक की विशेषता उत्पन्न हो जाती है। प्रचंड प्रतिभा संपन्न व्यक्तित्वों में भी ऐसी ही मानवीय विद्युत भरी पड़ी रहती है। उनके परामर्श ज्ञान सहयोग का भी समीपवर्ती लोगों को लाभ मिलता है। पर सबसे बड़ा लाभ उस तेजोवलय का होता है, जो अपनी शक्तिशाली क्षमता को निरंतर निस्सृत करता रहता है और जो भी उस संपर्क-सान्निध्य की लपेट में आता है, उसे देखते-देखते बदलने में, प्रभावित करने में सफल होता है। महामानवों के दर्शन, चरण-स्पर्श, आशीर्वचन, दृष्टिपात में जो सत्परिणाम विद्यमान रहते हैं, उसमें उनका प्रकाशपुंज तेजोवलय ही काम करता रहता है। दूसरे शब्दों में इस सूक्ष्मसत्ता को ही अदृश्य व्यक्तित्व कह सकते हैं। दृश्य व्यक्तित्व शरीर के रंग-रूप, सुडौलता, अंगों की बनावट आदि पर निर्भर रहता है, पर अदृश्य व्यक्तित्व पर इस दृश्य स्थिति का कोई प्रभाव नहीं होता है। कोई काला, कुरूप, दुर्बल, वृद्ध व्यक्ति भी अत्यंत तेजस्वी और प्रतिभा का धनी हो सकता है। जबकि वह बाहर से उपहासास्पद ही

लगेगा। इसके विपरीत सुंदर और आकर्षक नवयौवन संपन्न काया का व्यक्ति हेय और हीन स्तर का हो सकता है। आँखों को आरंभिक दर्शन में काय-कलेवर के अनुरूप किसी की वस्तुस्थिति समझने में भ्रम हो सकता है, जैसे ही उसकी यथार्थता अनुभव की जाएगी, वह भ्रम दूर हो जाएगा और वास्तविक व्यक्तित्व के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाने लगेगा।

मानवीय चुंबकत्व, तेजोवलय की क्षमता पर इतने विवेचन से विज्ञान जगत संतुष्ट नहीं होता। उसे प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। आध्यात्मिक प्रभामंडल के तो नहीं, किंतु उसके एक सूक्ष्म प्रतिरूप के जो आत्मविज्ञान के प्राणमयकोश एवं थियासाफी के इथटीक डबल से संगति खाता है, अनेकों वैज्ञानिक प्रमाण अब जुटा लिए गए हैं।

प्रभामंडल के संबंध में वैज्ञानिक खोज-बीन आरंभ हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं। तेजोवलय का मापन सबसे पहले डॉ० किलनर ने १९११ में किया। उन्होंने हाइवोल्टेज प्रकाश-स्रोत का प्रयोग कर यह पाया कि हर जीवित वस्तु के चारों ओर एक प्रभामंडल होता है। बैग्नेल (लंदन) के १९३१ तथा रिगस (अमेरिका) के १९७४ में किए गए कार्यों से यह पता चला है कि कुछ व्यक्तियों के आस-पास का प्रभामंडल विशिष्ट आभा लिए होता है। उसमें विद्यमान किरणों का स्पेक्ट्रम भी अन्य जीवों की तुलना में भिन्न होता है। इसे उन्होंने पहले किर्लियन तथा बाद में शिर्लियन फोटोग्राफी के द्वारा फोटो प्लेट पर अंकित किया। उँगलियों के पोरों, चेहरे के चारों ओर एवं सुषुम्ना के निचले भाग पर इसकी सघनता की मात्रा भिन्न-भिन्न पाई गई। इन्हीं वैज्ञानिकों का मत था कि ऑरा का मापन करके पहले से बताया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति किस मनोविकार या ग्रंथि का शिकार है एवं इसे आगे चलकर क्या रोग हो सकते हैं ?

मस्तिष्क में रक्त, स्राव, दमा, हृदयाघात, कैंसर जैसे रोगों में निदान की इस विधि में साठ से अस्सी प्रतिशत सफलता पाई गई। निषेधात्मक चिंतन वाले व्यक्ति एवं विधेयात्मक व्यक्तित्व में अंतर उनके आरा के विश्लेषण से हो सकता है, यह डा० श्रोडिंजर ने १८७६ में बताया।

आभामंडल के तीन स्पष्ट भाग वैज्ञानिकों ने किए हैं। पहला शरीर तक सीमित विद्युत विभव, दूसरा शरीर से एक इंच बाहर तक निकला तेजोवलय एवं तीसरा शरीर को कवच की तरह चारों ओर से लपेटे ६ से ८ इंच व कभी-कभी कई फीट तक शरीर से बाहर तक फैला हुआ—विशेषकर चेहरे, उँगलियों व जननेंद्रियो पर। इस तीसरे आभामंडल को जार्जमीक ने 'जोन ऑफ एनर्जी' माना है। पहले में बिंदु होते हैं, दूसरे में रेखाएँ तथा तीसरे में सघन आयनों का समुच्चय। पहले को स्थूलशरीर व बायोप्लाज्मा सम्मिश्रण कहते हैं, दूसरे को प्लाज्मा तथा तीसरे को विकिरण जिसमें वास्तव में हीलिंग (चिकित्सा) की क्षमता होती है।

सन् १९३९ में रूसी वैज्ञानिक किरलियन ने इलेक्ट्रोथेरेपी की शोध करते हुए पाया कि उनके शरीर में से रंग-बिरंगी विद्युतीय चिनगारियाँ निकल रही हैं। फिर उन्होंने दूसरे शरीरों की जाँच-पड़ताल की और पाया कि यह उनकी निजी विशेषता नहीं है वरन न्यूनाधिक मात्रा में दूसरों के शरीरों में से भी ऐसा ही प्रकटीकरण होता है।

मद्रास इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूरोलॉजी के अध्यक्ष पी० नरेंद्रन को इसी आधार पर अपने प्रयास आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिली। उनने एक ऐसी मशीन बनाने में भी सफलता पाई, जो उँगलियों के फोटोग्राफ प्रभामंडल सहित खींच लेती है।

प्रभामंडल एक प्रकार का छायापुरुष है, जो प्रकाश रूप होते हुए भी यह बताता है कि जिसका यह प्रकाश है उसके गुण, कर्म, स्वभाव, उद्देश्य एवं कृत्य क्या थे ? इस प्रकार यह विज्ञान विकसित होने पर किसी व्यक्ति के न रहने पर भी उसके निवास स्थान से संपर्क साधकर बहुत समय तक यह जाना जा सकेगा कि यहाँ किसी मनुष्य की ऊर्जा अपना कैसा और कितना प्रभाव छोड़ गई है ?

प्रभामंडल एक प्रकार से किसी व्यक्ति का अदृश्य व्यक्तित्व है जो उसके प्रभाव से उस क्षेत्र को देर तक प्रभावित करता रहता है। प्रकाश के अणुओं के रूप में जिन्हें देखा नहीं जा सकता है, पर जिनकी प्रतिक्रिया बाहर प्रकट होती है, सूक्ष्मशरीर का विश्लेषण एवं मापन करने में श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट को सफलता मिली थी। वे यह मानती व प्रयोग द्वारा प्रमाणित भी करती थी कि मनुष्य की विचारणा व भावना वातावरण में प्रकाश अणुओं के रूप में निस्सृत होती है।

सत्यापन करने हेतु श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट ने एक ऐसे व्यक्ति को चुना, जो छोटी-छोटी बातों में उत्तेजित हो जाता था। वह दिन में कई-कई बार क्रुद्ध हो जाने के कारण बहुत दुबला पड़ चुका था। सरदी-गरमी के हलके परिवर्तन भी उसको कष्टदायक प्रतीत होते थे। उसे कोई न कोई बीमारी प्राय: बनी रहती थी।

एक बार जब वह भरे गुस्से में था, तब श्रीमती ट्रस्ट ने उसे लिटा दिया और उसके नंगे शरीर पर बालू की हलकी परत बिछा दी। उसके शिष्य, अनुयायी और कई वैज्ञानिक भी उपस्थित थे। उन सबने बड़े कुतूहल के साथ देखा कि जिस प्रकार पानी से भरी काँसे की थाली को बजाने से पानी की थरथरी काँसे के अणुओं में उत्तेजन और स्पंदन का आभास कराती है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर से भी प्रकाश अणु निरंतर निस्सृत होते और थरथरी पैदा करते थे।

क्रोध जैसे उत्तेजनशील आवेश के समय यह प्रकाश अणु बड़ी तेजी से थरथराते हुए निकलते है, इसलिए उस समय तो स्पष्ट आभास हो जाता है पर सामान्य स्थिति में प्रकाश कणों की थरथराहट धीमी होती है। जो व्यक्ति जितना अधिक शांत, कोमल-चित्त, मधुर स्वभाव, मितभाषी, स्थिर बुद्धि का होता है; उसके सूक्ष्मशरीर के प्रकाश अणु बहुत धीरे-धीरे निकलते हैं और बहुत समय तक शरीर में शक्ति, उष्णता और सहनशीलता बनाए रखते हैं। ऋतुओं के आकस्मिक परिवर्तन भी शरीर पर दबाव नहीं डाल पाते।

सोवियत रूस के प्रसिद्ध अंतरिक्ष केंद्र के पास आल्माअता में कजाकिस्तान राज्य विश्वविद्यालय की जैव विज्ञान प्रयोगशाला के निर्देशक डा० व्ही० एम० इन्युशियन पी० एच-डी० ने अपने एक शोधपत्र में कहा था कि उच्चस्तरीय विशेषीकृत तथा क्लिष्ट विधियों के द्वारा अत्युच्च संवेदना वाली फोटोग्राफिक प्रक्रियाओं के द्वारा पहले खरगोश और बाद में मनुष्यों के फोटोग्राफ लिए जाने पर, सोवियत वैज्ञानिक 'बायोप्लाज्मा' तथा शरीर के चारों ओर उसकी परिव्याप्ति (झीनी चादर) की फोटो लेने में सफल रहे। फोटोग्राफों से पता चलता है कि जैविक—प्रकाश (चमक) का कारण जैव-प्लाज्मा है, जो इनका आधार होता है और इनमें ध्रुवीय छोर होते हैं।

किर्लियन एवं शिर्लियन फोटोमापन पद्धति में खींचे गए चित्रों में शारीरिक अंगों के प्रतीक रूप में सूक्ष्म धब्बे देखे गए जो इन अंगों से विसर्जित होने वाली विद्युतीय ऊर्जा के द्योतक थे। इन छायाचित्रों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रत्येक प्राणी के दो शरीर होते हैं। पहला प्राकृतिक अथवा भौतिक जो आँखों से दिखाई देता है और दूसरा सूक्ष्म शरीर जिसकी सब विशेषताएँ प्राकृतिक शरीर जैसी होती हैं, पर जो दिखाई नहीं देता। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह

सूक्ष्मशरीर ऐसे सूक्ष्म पदार्थों का बना होता है जिनके इलेक्ट्रान ठोस शरीर के इलेक्ट्रानों की अपेक्षा अधिक तीव्रगति से चलायमान होते हैं। उनके अनुसार सूक्ष्मशरीर, भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है।

सूक्ष्मशरीर मानव मन की तरह तीव्रगति वाला तो है ही तथा अज्ञात क्षेत्रों का परिचय प्राप्त करने और अनजानी वस्तुओं की भी जानकारी पाने में समर्थ है। अविज्ञात सूक्ष्मजगत में जुड़े सूक्ष्मशरीर की क्षमताएँ अभी पूरी तरह अविज्ञात ही हैं। किंतु उनके जो स्थूल प्रमाण मिले हैं, वे भी कम विलक्षण नहीं हैं। उनसे मनुष्य के भीतर सन्निहित प्रचंड सामर्थ्य स्रोत का आभास तो मिलता ही है।

सूक्ष्मशरीर इस जन्म में भी स्थूलशरीर के साथ ही सक्रिय रहता है। रात्रि को सो जाने के उपरांत तो स्वप्न दीखते हैं। वे अनुभूतियाँ सूक्ष्मशरीर की ही हैं। दिव्यदृष्टि, दूरश्रवण, दूरदर्शन, विचार-संचालन, भविष्य ज्ञान, देवदर्शन आदि उपलब्धियाँ भी सूक्ष्मशरीर के माध्यम से ही होती हैं। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि को उच्चस्तरीय योग साधना द्वारा इसी शरीर को समर्थ बनाया जाता है। ऋद्धियों और सिद्धियों का स्रोत इस सूक्ष्मशरीर को ही माना जाता है।

तंत्र विज्ञान में छायापुरुष का साधना विधान है। सूक्ष्मशरीरधारी सजीव छायापुरुष अपना ही अंश होता है। उसकी सिद्धि में अपना ही एक और शरीर अपने हाथ में, अपने अधिकार में प्रकट होकर आ जाता है; जो अपने ही जीवित भूत की तरह होता है और भूतों जैसी अतींद्रिय शक्तियों से संपन्न होता है। योगी अपने सूक्ष्मशरीर से और अस्मिता से विनिर्मित निर्माण-चित्रों के द्वारा एक ही साथ अनेक कार्य करने में समर्थ होते हैं। यह शक्तिशाली व्यक्तित्व है तो

हममें से हर एक के पास किंतु उसे जाग्रत-विकसित करने लायक साधना-प्रयास सब कर नहीं पाते। जो कर लेते हैं वे न केवल एक अद्वितीय उपकरण के स्वामी हो जाते हैं अपितु सूक्ष्मजगत के नियमों के भी ज्ञाता हो जाते हैं और उनकी बौद्धिक-भावनात्मक सीमाएँ बहुत विस्तृत हो जाती हैं।

सूक्ष्मशरीर, बायोप्लाज्मा, प्रभामंडल का अस्तित्व यही प्रमाणित करता है कि जो कुछ भी दृश्यमान है, उससे भी कहीं अधिक विलक्षण और भी अधिक सूक्ष्मतम एवं सामर्थ्यवान सत्ता मानवीय काया से गुँथी हुई है। अणु में विभु, लघु में महान की प्रत्यक्ष परिचायक यह सत्ता बड़ी अद्‌भुत है। यह वैज्ञानिकों के लिए शोध का विषय एवं आत्मिकी वेत्ताओं के लिए साधना क्षेत्र का एक प्रयोग-परीक्षण भी है। इस सूक्ष्मशरीर पर हो रहा अनुसंधान बताता है कि विज्ञान ने भी इसके अस्तित्व को स्वीकार कर आत्मसत्ता के अस्तित्व को प्रमाणित करने की दिशा में कुछ कदम बढ़ाए हैं।

❐

# मानवीय काया में समाया वैभव साम्राज्य

बड़े पदार्थ अणुओं का एक विशाल रूप होते हैं। इसमें कलेवर भर का विस्तार होता है। प्रत्येक कण को अपना स्वतंत्र अस्तित्व और प्रभाव प्रकट करने का अवसर नहीं मिलता। वे यदि अलग-अलग होकर अपनी मूल सत्ता को प्रकट कर सकने की स्थिति में होते हैं तो आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं।

पदार्थ के सूक्ष्म कणों में शक्ति का अनंत स्रोत छिपा पड़ा है। प्रकृति का जो स्थूल वैभव दिखाई पड़ता है, उसका भी कारण सूक्ष्म ही है। सूक्ष्म ही स्थूल जगत का आधार है। हमारी स्थूल बुद्धि इस तथ्य को नहीं समझ पाती। वह दृश्यमान स्थूल पदार्थों को ही देख पाती है। उनका मोटा मूल्यांकन करके मोटा उपयोग ही समझ पाती है। फलतः संबंधित व्यक्तियों एवं पदार्थों से हम बहुत छोटा सा ही लाभ उठा पाते हैं। कदाचित उनकी सूक्ष्म शक्ति को समझें और उनसे निस्सृत होने वाली चेतना एवं प्रेरणा को समझें, तो हर प्राणी और हर पदार्थ हमें इतना अधिक अनुदान दे सकता है कि सिद्धियों एवं विभूतियों की किसी प्रकार की कमी न रहे।

शरीर का कण-कण इस तथ्य का सत्यापन करता है। चाहे जीवकोश हों या न्यक्लीय अम्ल अथवा रक्त की एक बूँद। यह स्मरण रखना चाहिए कि एक क्यूबिक इंच के १२००००००वाँ भाग आकार का एक लाल रक्ताणु होता है। एक बूँद खून में इस तरह के प्रायः तीन लाख अणु होते हैं। एक बिंदु में मनुष्य के रक्त की लगभग पाँच हजार लाल कोशिकाएँ समा सकती हैं। वे ही खनिजों, क्षारों तथा अन्य रसायनों को अपने ऊपर लादे सारे शरीर में ढोते फिरते हैं। इन पर कितनी हलकी और विरल वस्तु लद सकती है,

इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है और खाद्य पदार्थों में सूक्ष्मता के सिद्धांत की उपयोगिता समझी जा सकती है।

रक्त के लाल कण अपने संपूर्ण जीवन काल में कुछ ही महीनों के अंदर ढाई लाख बार शरीर की यात्रा कर लेते हैं। दूसरी शताब्दी के सुप्रसिद्ध यूनानी चिकित्सक क्लोडियस गेलेन ने बताया कि शरीर को जीवंत रखने के लिए रक्त का विद्यमान होना नितांत आवश्यक है। लेकिन सत्रहवीं सदी में उक्त मान्यताओं में आमूल-चूल परिवर्तन आया और ब्रिटेन की चिकित्सक विलियम हार्वे के सिद्धांत को पूर्ण रूप से स्वीकार किया जाने लगा। हार्वे ने रक्त परिसंचरण का मूल केंद्र हृदय को माना है। शरीर के विभिन्न अंग-अवयवों को रक्त की आपूर्ति हृदय के माध्यम से ही होती है। भोजन से रक्त बनकर सीधा नहीं पहुँचता वरन उसका हृदय में शुद्धीकरण होने के पश्चात ही वह अपनी क्रिया संपन्न करता है। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं कि गेलेन का सिद्धांत गलत है। वह अपनी जगह पूर्णतः सत्य है।

उदाहरण के लिए परिशुद्ध रक्त का एक नमूना कुछ समय के लिए सेन्ट्रीफ्यूज किया जाए तो यह प्रक्रिया रक्त को पृथक-पृथक कोशिकाओं में बाँट देती है। ये रक्त कण नलिका के ठीक नीचे लाल मात्रा में जमे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। हलका पीला रंग नली के ऊपर वाले भाग में दिखता है जिसे प्लाज्मा के नाम से पुकारा जाता है। संपूर्ण रक्त की मात्रा में ४५ प्रतिशत लाल कण तथा ५५ प्रतिशत प्लाज्मा होता है। इन दोनों परतों के मध्य एक पतली परत श्वेत कणों की रहती है जो प्लाज्मा से तो भारी बैठती है लेकिन लाल कणों से हलकी।

शरीरशास्त्र के विशेषज्ञों का कहना है कि ८० लाख रक्त कण एक सेकंड में ही अपनी जीवन लीला पूरी कर लेते हैं। लाल कणों

की उपस्थिति तो शरीर में निरंतर बनी ही रहती है। शरीर में इन कणों का फैलाव ५० लाख प्रति घन मिली मीटर के बीच में होता है। महिलाओं के शरीर में इनके फैलाव की संख्या ४५ लाख होती है। नवजात शिशु में तो इनकी संख्या सबसे अधिक देखने को मिलती है। शरीरशास्त्रियों के अनुसार ७०० लाल कणों के मध्य १ श्वेत कण विद्यमान रहता है।

रक्त के लाल कणों की रंगीनता का प्रमुख कारण लौहयुक्त श्वसन रंग द्रव्य (आइरन कन्टेनिंग रेसपाइरेटरी लिगमेंट) हीमोग्लोबिन को समझा जाता है। इसका मुख्य कार्य फेफड़ों से ऑक्सीजन को लेकर ऊतकों तक पहुँचाने का होता है। प्रत्येक लाल कण के अंतर्गत २८ करोड़ हीमोग्लोबिन के अणु विद्यमान रहते हैं और प्रत्येक अणु में १० हजार परमाणुओं की संख्या देखने को मिलती है जो ऑक्सीजन की मात्रा से परिपूर्ण होते हैं। यदि मनुष्य के शरीर में विद्यमान हीमोग्लोबिन में से संपूर्ण लौह की मात्रा निकाली जाए तो ढाई इंच लंबी एक कील सुगमतापूर्वक बन सकती है।

रक्त में सन्निहित आक्सीजन की सांद्रता हवा की तुलना में कम होती है। इसीलिए अपनी प्राकृतिक विशेषताओं के परिणामस्वरूप आक्सीजन हवा से निकलकर रक्त तक जा पहुँचती है और वहाँ पहुँचकर ऑक्सीजन हीमोग्लोबिन का निर्माण करती है।

रक्त के लाल कणों की अपेक्षा श्वेत कणों की संख्या बहुत कम होती है। शरीर में इनका फैलाव ४००० से १००००० प्रति घन मिली मीटर तक का होता है।

तीसरी प्रकार के रक्त कणों को थ्रोंबोसाइट के नाम से पुकारा जाता है। दूसरे शब्दों में इन्हें प्लेटकेट भी कहते हैं। इनका आकार

लाल कणों के ठीक चौथाई होता है। रक्त में इनकी संख्या ढाई लाख प्रति घन मिलीमीटर की मानी गई है।

रक्त के तरल भाग को प्लाज्मा के नाम से जाना जाता है। इसमें पाई जाने वाली कोशिकाएँ तैरती हुई प्रतीत होती हैं। इसमें पानी की मात्रा ९० प्रतिशत, प्रॉटीन ७ प्रतिशत, सोडियम क्लोराइड ३०.९ प्रतिशत तथा हारमोन्स ऐन्टीवाडीज न्यूट्रोडंस, वेस्ट प्रोडक्ट, एंजाइम्स जैसे अनेकानेक पदार्थ भी विद्यमान रहते हैं।

रक्त में पाए जाने वाले इन लाल कणों को जिनकी सघनता से ही रक्त का रंग लाल होता है निकाल डालें, तो जो शेष बचेगा वह पानी होगा। चरक संहिता के अनुसार रक्त में ८ अंजलि और मस्तिष्क में आधा अंजलि केवल जल ही होता है। शरीर के भार का ७० प्रतिशत भाग केवल जल ही होता है। यदि आप १०० पौंड वजन के हैं तो आप में ७० पोंड पानी है। रक्त में तो यह प्रतिशत ९२ का होता है अर्थात शरीर में यदि ६ लिटर रक्त  है तो उसमें रक्त कणों की मात्रा कुल ४८ लिटर ही होगी। शेष ५२ लिटर मात्रा केवल जल की होगी।

यहाँ तक कि रक्त के ५०० मिलीलीटर परिमाण में एक औंस के साठवें भाग के बराबर शर्करा विद्यमान होती है। लगभग ८० से १२० मिलीग्राम प्रति ५०० मिलीलीटर की यह मात्रा मूलतः ईंधन की भूमिका निभाती है, जिसके आधार पर कोशिकाएँ मांसपेशियाँ गतिशील रहती हैं। समस्त अवयवों को सतत क्रियाशील बनाए रखने हेतु यह न्यूनतम मात्रा ईंधन की अत्यंत अनिवार्य हैं। इसकी मात्रा को इतनी ही बनाए रखने का कार्य इन्सुलिन का है, जिसे पक्वाशय (पेंक्रियाज) ग्रंथियाँ रक्त में छोड़ती हैं। इसमें जरा भी न्यूनाधिक होने पर डाइबिटीज होने या हाइपोग्लायसीमिया होने की संभावना रहती है।

शरीर के सामान्य अवयवों की संरचना और उनकी कार्यपद्धति का ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता आया है। इसलिए रोगों के कारण और निवारण से संबंध में काफी प्रगति भी हुई है। पर यह अंतःस्रावी ग्रंथियों की आश्चर्य करने वाली हरकतें जब से सामने आई हैं तब से चिकित्साविज्ञानी स्तब्ध रह गए हैं। प्रत्यक्षतः शरीरगत क्रिया-कलाप में इनका कोई सीधा उपयोग नहीं है। वे किसी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति नहीं करती, चुपचाप एक कोने में पड़ी रहती हैं और वहीं से तनिक सा स्राव बहा देती हैं। वह स्राव भी पाचन अंगों के द्वारा नहीं, सीधा रक्त से जा मिलता है और अपना जादू जैसा प्रभाव छोड़ता है।

हारमोन, शरीर और मन पर कितने ही प्रकार के प्रभाव डालते और परिवर्तन करते हैं। उनमें से एक परिवर्तन काम वासना, मानसिक जागरण और यौन अंगों की प्रजनन क्षमता का भी सम्मिलित है। यौन अंगों का विकास एवं तदनुरूप भावोत्तेजना का पैदा होना, न होना कुछ हारमोन्स की न्यूनाधिक मात्रा का रक्त में घटने या बढ़ने के कारण ही होता है। प्रजनन क्षमता किसी नर या नारी में समुचित अंग विकसित होने के बावजूद भी न हो यह भी संभव है। यह होता है हाइपोथेलेमस के इशारे पर कार्य करने वाले हारमोन्स की रक्त में कुछ माइक्रो मिलीलीटर मात्रा के कारण।

शारीरिक सुंदरता और कुरूपता से हारमोन स्रावों का गहरा संबंध है। आकृति का ढाँचा तो जन्म से पूर्व ही माता के गर्भ में बन जाता है। प्रसव के उपरांत उसमें सुधार की थोड़ी-बहुत गुंजाइश रहती है। आहार-विहार को सही रखने से काया नीरोग रहती है, वदन पुष्ट एवं बलिष्ठ बनता है, फिर भी सुंदरता एक अलग वस्तु है। उसका न केवल चेहरे से वरन त्वचा पर रहने वालों की चमक,

चिकनाई एवं कोमलता से भी संबंध है। हाथ-पैर कड़े, सूखे एवं थोड़े छितराई प्रकृति के हों। चेहरे की हड्डियाँ उभरी हुई हों, आँखें धसी हुईं हों, नाक में बांकापन, फैलाव तथा लंबाई का अनुपात ठीक न हो, तो मनुष्य कुरूप लगेगा। सौंदर्य की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। आँखों के सुहाने की बात वातावरण व परंपरा से भी संबंध रखती है। नीग्रो वर्ग के लोगों में घुँघराले छोटे बाल, चौड़ी नाक, मोटे होठ उस देश के निवासियों में सुंदरता के प्रतीक माने जाते हैं। जबकि गोरी नस्लों के लोग उन्हें कुरूप कहते हैं। आर्यन नस्ल किसी को सुंदर लगती है। किन्हीं को मंगोलों का चौड़ा चेहरा, पतली आँखें अधिक सुहावनी लगती हैं। यह आँखों में बसे सौंदर्य के मापदंड पर निर्भर है।

इतने पर भी चेहरे की आकर्षण और अवयवों की कोमलता, त्वचा की परत में रहने वाली चिकनाई, दाँतों की पंक्ति और कितने ही आधार ऐसे हैं, जिन पर अधिकांश को लुभावनापन प्रतीत होता है।

शृंगार प्रसाधनों का इन दिनों बहुत प्रचलन है। समझा जाता है कि उन रंग-रोगनों के सहारे त्वचा के रंग एवं चमक को इच्छानुसार बनाया जा सकता है। इतने पर भी अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। इस पुताई के भीतर झाँकती वास्तविकता को पहचानने में आँखें देर तक धोखा नहीं खाती।

स्वाभाविक सौंदर्य बहुत करके प्राकृतिक होता है और उसका कारण हारमोन स्रावों से संबंधित पाया गया है। हारमोन रक्त में मिलकर अवयवों को प्रभावित करते हैं और स्वभाव पर भी असर डालते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी सुंदरता और कुरूपता के साथ भी संबंध जुड़ा रहता है।

एस्ट्रोजन स्राव अधिक मात्रा में हो, तो चेहरे पर काले मुहांसे उठते रहेंगे और उठती आयु में ही बाल झड़ते रहेंगे। मासिकधर्म अनियमित होने लगता है। स्तन उभरते तो हैं पर जल्दी ही लटकने लगते हैं। इतने पर भी उनमें दूध की कमी रहती है। यदि यह स्राव संतुलित रहे तो न केवल नारी का, वरन नर का भी चेहरा और शरीर सुंदर लगेगा।

एस्ट्रोजन हारमोन का उत्पादन घटने लगे तो त्वचा बहुत लटकने लगेगी, झुर्रियाँ पड़ेगी और मांस का गठीलापन घट जाएगा। इसकी कमी के कारण सूजन न होते हुए भी वैसा ही कुछ प्रतीत होगा और रंग में पीलापन बढ़ने लगेगा।

थायोराइड स्रावों का अनुपात घट-बढ़ जाने से आँखों के नीचे काले गड्ढे पड़ने लगते हैं। अप्रिय गंध आती है। पसीना कम या अधिक छूटता है। चमड़ी पर रूखापन रहने लगता है। बालों की जड़ों में रूसी जैसा मैल जमने लगता है।

स्टियोराइड हारमोन्स की स्थिति डाँवाडोल रहे तो वजन घटेगा। खुश्की रहेगी, प्यास लगेगी और फुरती घटती जाएगी। हँसने और मुस्कराने तक को मन न करेगा।

यौन हारमोन नर और नारी में अलग-अलग प्रकार के होते हैं। दोनों वर्गों में दोनों की ही उपस्थिति रहती है। पर जिसमें जिसका बाहुल्य रहता है, उसके शरीर में विपरीत लिंग के भी लक्षण पाए जाते हैं। नारी शरीर पर अधिक बालों का होना, दाढ़ी-मूँछ के स्थान पर भी बालों का उगना, आवाज का भारी होना इसी असंतुलन का परिणाम है।

पुरुष शरीर में नारी हारमोन का अनुपात अधिक हो तो उनका स्वभाव नारी जैसा बनने लगेगा। इच्छाएँ भी वैसी होने लगेंगी। नारी

में मर्दानगी और नर में जनानापन इन हारमोन की विसंगति का ही परिणाम है।

हारमोनों का उचित सम्मिश्रण आँखों में चमक, स्वभाव में मस्ती मिलनसारी उत्पन्न करता है। इसके विपरीत स्वभाव संकोची या उद्धत होते देखा गया है।

अनैच्छिक स्नायुमंडल का केंद्र मस्तिष्क का एक लघु अंश हाइपोथेलेमस होता है। यही 'हाइपोथेलेमस' नारी व पुरुष ग्रंथियों को भी नियंत्रित करता है। साथ ही 'मोनोएमीन आक्सीडेज' नामक एंजाइम भी संपूर्ण शरीर में विकर्ण होते हुए केंद्रीय स्नायविक प्रणाली में विशेष रूप से जमा रहता है। 'हाइपोथेलेमस' द्वारा पिट्यूटरी ग्रंथि भी उत्तेजित होती है और उससे विभिन्न हारमोन्स निकलते हैं, जो भावनाओं का परिणाम भी होते हैं और नई भावनाओं का कारण भी। किसी नई परिस्थिति के उपस्थित होने पर नलिका-विहीन ग्रंथियों पर दबाव पड़ता है और वे विभिन्न हारमोनों को स्रवित करती हैं। इन हारमोनों की शरीर में प्रतिक्रिया होती है और यह प्रतिक्रिया उसी के अनुरूप भावना समूहों को जन्म देती है। हारमोन्स की तनिक सी बूँद भावनाओं का रूप बदल देती है। शारीरिक संरचना एवं मानसिक क्रिया-कलाप इससे आमूल-चूल प्रभावित होते हैं।

पिट्यूटरी ग्रंथि से यौन उभार के समय उत्सर्जित होने वाला गोनेडोट्रोफिन रक्त में मिलकर अंडाशय को जाग्रत करता है और उस जाग्रति के फलस्वरूप वहाँ एक नए हारमोन 'एस्ट्रोजन' की उत्पत्ति होने लगती है। एक दिन में उसकी मात्रा चीनी के दाने के हजारवां भाग के बराबर नगण्य जितनी होती है। पर उतने से ही प्रजनन अवयवों का द्रुतगति से विकास होता है और प्रायः दो वर्ष पूर्व की किशोरी, युवती के सभी चिन्हों से सुसज्जित हो जाती है।

अंडाशय प्रायः चार लाख कोशिकाओं का बना होता है पर उसमें से चार-पाँच सौ ही विकसित होकर अंडा बनता है। ग्यारह से लेकर चौदह वर्ष की आयु में क्रमशः एक-एक अंड विकसित होता है। उसके आधार पर प्रायः २८वें दिन रजोधर्म होने लगता है। जो तीन दिन से लेकर आठ दिन तक स्रवित होता रहता है। वाशिंगटन विश्व विद्यालय के डॉ० एडगर एलन तथा एडवर्ड ए० डौजी ने पीयूष ग्रंथि के प्रभाव से अंडाशय में उत्पन्न होने वाली ऐसी संवेदनाओं का पता लगाया है, जो यौन आकांक्षाओं के उतार-चढ़ाव के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका उत्पन्न करती है। उनके प्रभाव से मस्तिष्क और प्रजनन अंगों में ऐसी उत्तेजना उत्पन्न होती है जिसके कारण यौन आकांक्षा में तीव्रता, मंदता अथवा मध्य की स्थिति बनती है।

उन अंतःस्रावी ग्रंथियों की भेद-उपभेद की दृष्टि से संख्या भी बढ़ती जा रही है। पर साधारणतया उसमें से छह प्रमुख हैं— (१) पीयूष ग्रंथि (२) कंठ ग्रंथि (३) अधिवृक्क ग्रंथि (४) अग्न्याशय ग्रंथि (५) अंडाशय ग्रंथि (६) वृषण ग्रंथि।

इसके अतिरिक्त पीनियल ग्रंथि का नाम भी पीयूष पिट्यूटरी ग्रंथि के साथ लिया जाता है। शरीर का आकार सामान्य रखने या उसे असाधारण रूप से घटा या बढ़ा देने का एकाएक भारी हेर-फेर उत्पन्न कर देने का कारण मस्तिष्क स्थित पीयूष ग्रंथि ही है। उसमें जहाँ बाल की नोंक की बराबर अंतर पड़ा कि शरीर में वैसी ही विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के सर्जन डॉ० हार्वे कुशिंग ने एक पिल्ले की पीयूष ग्रंथि निकाल दी। बस, फिर वह बढ़ा ही नहीं। सदा के लिए पिल्ला ही बना रह गया। चूहों के बच्चे पीयूष ग्रंथि रहित किए गए तो वे बढ़िया से बढ़िया भोजन देने पर भी छोटे ही बने रहे। न उनका कद बढ़ा और न वजन में रत्ती

भर का अंतर आया। बूढ़े होने तक ये बच्चे ही बने रहे। कोलंबिया विश्वविद्यालय के सर्जन फिलिप स्मिथ ने एक चूहे की पीयूष ग्रंथि दूसरे में फिट कर दी तो दूने हारमोन बढ़ने से वह चूहा असाधारण रूप से बढ़ा और अपने साथियों की तुलना में तीन गुना दैत्य जैसा हो गया।

यदि पीयूष ग्रंथि में थोड़ी सी खराबी रह जाए और एस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्टेरोन हारमोन समुचित मात्रा में न बने तो अंड का विकास न हो सकेगा और नारी वंध्या ही बनी रहेगी।

स्थूलशरीर का मूल आधार वस्तुतः ये ग्रंथियाँ व इनसे उत्सर्जित होने वाला रस-स्राव ही है जो सूक्ष्माधिक मात्रा में रक्त में घुलकर संजीवनी का काम करता है एवं शरीर को मनचाहा रूप, चिंतन भावात्मक ढाँचा प्रदान करता है। जहाँ कहीं भी इन रसों के उत्पादन या प्रवाह में तनिक भी व्यतिक्रम होता है, तो शरीर का ही नहीं वरन मन का ढाँचा भी लड़खड़ाने लगता है।

पिट्यूटरी हारमोन ग्रंथियों में अंतर आने से शरीर का विकास असाधारण रूप से रुक सकता है और आश्चर्यजनक रीति से बढ़ सकता है। २५ इंच ऊँचा आदमी, टामथंब और २४ इंच ऊँची स्त्री लेवोनिया लोगों की दृष्टि में आश्चर्यजनक है। पर ये हारमोन ग्रंथियों की एक मामूली सी उलट-पुलट मात्र है। टामथंब जन्म के समय ९ पौंड २ औंस का था पर न जाने क्या हुआ कि आशा के विपरीत वह जहाँ का तहाँ रह गया। बाजीगरी का धंधा करता था। उसने अपने ही जैसी बौनी लड़की को भी ढूँढ़ निकाला उससे उसकी शादी करके अपने व्यवसाय को और भी अधिक आकर्षण बनाया। उनका यह पलड़ा दूसरी तरफ झुक जाए तो फिर लंबाई ही लंबाई बढ़ती चली जाएगी। ८ फुट ११ इंच ऊँचा आदमी राबर्ट

वाडली ताड़ के पेड़ जैसा लगता था। पलामू (बिहार) में साड़े सात फुट ऊँचा तिलवर नामक व्यक्ति कुछ समय पहले तक लोगों का ध्यान अपनी अनोखी लंबाई की ओर खींचता रहता था।

रूस का शासक जार पीटर स्वयं लंबे कद का था, उसे लंबे आदमी बहुत पसंद थे। उसका एक प्रिय लंबा सार्जेंट जब मरा तो जार ने उसके अस्थिपंजर को कुन्सत्कैयर के संग्रहालय में सुरक्षित रखने का आदेश दिया। तब से वह रखा ही हुआ था। अब कई वर्ष के बाद एक्स किरणों की सहायता से उस कंकाल की असाधारण लंबाई का कारण खोजा गया है, तो उसमें पीयूष ग्रंथि से अधिक स्राव होना ही कारण पाया गया है।

सिकंदरिया में एक ऐसा बौना मनुष्य था, जिसकी ऊँचाई केवल १७ इंच थी। उसका नाम था अलोपियस। उसे वहाँ के अमीर जैंबिलकस ने अपने मेहमानों के मनोरंजन के लिए अपने पास रखा था और उसे कभी-कभी तोते के पिंजड़े में बंद करके इधर-उधर ले जाया जाता था।

ओहियो (संयुक्त राज्य) के सिनसिनाटी नगर में एक लड़की थी कुमारी फैनी माइल्स। यह सन १८८० में जन्मी। इसके और सब अंग तो साधारण थे, पर पैरों के पंजे असाधारण रूप से लंबे थे। उनकी लंबाई दो-दो फुट थी। उसकी इस विचित्रता से सभी डरते थे और कोई उससे विवाह करने के लिए तैयार न हुआ। यह कुछ नहीं, मात्र हारमोन्स के असंतुलन की प्रतिक्रिया ही थी, जिसने इस त्रासदी भरी विचित्रता को जन्म दिया।

ऐसी ही कुछ विचित्रता पीनियल ग्रंथि से जुड़ी है। यह तृतीय नेत्र से मिलती-जुलती शिखा के ठीक नीचे मस्तिष्क में थर्ड वेंट्रीकल के नीचे मस्तिष्क मध्य के पृष्ठ भाग में अवस्थित है। इसे हारमोन

स्राव की दृष्टि से अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता एवं एक प्रकार का वेस्टीजियल अंग माना जाता है। लेकिन नवीनतम शोधों ने इसे यौन विकास, भावनात्मक उतार-चढ़ाव, निद्रा-जागरण चक्र एवं शरीर की बायोलाजीकल रिदम से संबंधित बताया है।

पीनियल ग्रंथि भ्रूमध्य भाग में हैं। जहाँ देवताओं का तीसरा नेत्र बताए जाता है। प्राचीन काल में ऐसे प्राणी भी थे जिनके मस्तिष्क में सचमुच एक अतिरिक्त तीसरी आँख और भी होती थी, जिससे वे बिना गरदन मोड़े पीछे के दृश्य भी देख सकते थे। अभी भी अफ्रीका में कुछ ऐसी छिपकलियाँ देखी गई हैं जिनके सिर पर कार्निया, रेटिना लेन्स युक्त तीसरी आँख होती है।

धान के दाने की बराबर धूसर रंग की इस छोटी सी ग्रंथि में आश्चर्य ही आश्चर्य भरे पड़े हैं। जिन चूहों में दूसरे चूहों की पीनियल ग्रंथि का रस भरा गया, वे साधारण समय की अपेक्षा आधे दिनों में ही यौन रूप में विकसित हो गए और जल्दी बच्चे पैदा करने लगे। समय से पूर्व उनके अन्य अंग विकसित हो गए पर इस विकास में जल्दी भर रही, मजबूती नहीं आई। इसे प्रिकाशियस प्यूबर्टी, उम्र से पूर्व होने वाला यौन विकास कहते हैं। इस असमान्यता के कारण वैज्ञानिकों की अभिरुचि पीनियल में और भी बढ़ी।

कलावार (अफ्रीका) में भी कुछ समय पूर्व ऐसी ही घटना घटित हुई थी, जहाँ एक्क्रो नामक एक नीग्रो की आठवर्षीय पत्नी ने आठ वर्ष चार मास की आयु में ही प्रसव किया और एक बालिका को जन्म दिया। आश्चर्य यह और देखिए कि वह बच्ची भी अपनी माँ की तरह आठ वर्ष की आयु में ही माँ बन गई। इस प्रकार उमेजी को १७ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते दादी बनने का अवसर प्राप्त हो गया।

८ जनवरी सन् १९१० को दो चीनी बच्चों ने सामान्य बालकों को जन्म दिया। जिसमें माता की उम्र ८ वर्ष और पिता की उम्र ९ वर्ष थी। संसार में यह सबसे छोटे माता-पिता हैं। अमीय फुकेन प्रांत का यह कृषक परिवार 'साद' नाम से पुकारा जाता है। इस परिवार में ऐसे ही बाल प्रजनन के और भी उदाहरण मिलते हैं। ये सारे प्रसंग पीनियल ग्रंथि की अनियमितताजन्य असमान्यता के हैं। ऐसे ढेरों उदाहरण चिकित्सा इतिहास में ढूँढ़ने पर मिलते हैं।

अब यह माना जाने लगा है कि न्यूतम मात्रा में सेरोहोनिन एवं मेलेटोनिन नामक रसस्राव अपने स्थान पर बैठे-बैठे हाइपोथेलेमस के माध्यम से यौन विकास की प्रक्रिया का निर्धारण करते हैं। हारमोन्स की संरचना एवं चमत्कृति से भरी शरीर में होने वाली क्रियाएँ अदभुत हैं। इसे सामान्य जीवनक्रम से समझा जा सकता है।

छोटी उम्र में लड़की और लड़के लगभग एक जैसे लगते हैं। कपड़ों से, बालों से उनकी भिन्नता पहचानी जा सकती है अन्यथा वे साथ-साथ हँसते, खेलते, खाते हैं; कोई विशेष अंतर दिखाई नहीं पड़ता। पर जब बारह वर्ष से आयु ऊपर उठती है तो दोनो में काफी अंतर अनायास ही उत्पन्न होने लगता है। लड़के की आवाज भारी होने लगती है, होठों के बाल काले होने लगते हैं और कोमल अंग कठोर होने लगते हैं। लड़कियाँ शरमाने लगती हैं। उनके कुछ अंगों में उभार आने लगते हैं और नए किस्म की इच्छाओं तथा कामनाएँ मन में घुमड़ने लगती हैं।

ये हारमोन स्रावों की करतूत है। वे समय-समय पर ऐसे उठते-जगते हैं मानो किसी घड़ी में अलार्म लगाकर रख दिया हो अथवा टाइम बम को समय के कांटे के साथ फिट करके रखा हो। यौवन उभार के संबंध में इन्हीं के द्वारा सारा खेल रचा जाता है।

अन्य सारा शरीर अपने ढंग से ठीक काम करता रहे पर यदि इन हारमोन ग्रंथियों का स्राव न्यून हो, तो यौन अंग ही विकसित न होंगे और यदि किसी प्रकार विकसित हो भी जाए तो उनमें वासना का उभार नहीं होगा, न कामेच्छा जाग्रत होगी और न उस क्रिया में रुचि होगी। संतानोत्पादन तो होगा ही कैसे?

साधारणतया कामोत्तेजना का प्रसंग १५-१६ वर्ष की आयु से आरंभ होकर ६० वर्ष पर जाकर लगभग समाप्त हो जाता है। स्त्रियों का मासिकधर्म बंद हो जाने पर लगभग पचास वर्ष की आयु में उनकी वासनात्मक शारीरिक क्षमता और मानसिक आकांक्षा दोनों ही समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार ६० वर्ष पर पहुँचते-पहुँचते पुरुष की इंद्रियाँ एवं आकांक्षाएँ भी शिथिल और समाप्त हो जाती हैं। यह सामान्य क्रम है। पर कई बार हारमोनों की प्रबलता इस संदर्भ में आश्चर्यजनक अपवाद प्रस्तुत करती है। बहुत छोटी आयु के बच्चे भी न केवल पूर्ण मैथुन में वरन सफल प्रजनन में भी समर्थ देखे गए हैं। उसी प्रकार शताधिक आयु हो जाने पर भी वृद्ध व्यक्तियों में इस प्रकार की युवावस्था जैसी परिपूर्ण क्षमता पाई गई है।

लिंगभेद से संबंधित हारमोनों में गड़बड़ी पड़ जाए तो नारी के मूँछें निकल सकती हैं। पुरुष बिना मूँछ का हो सकता है तथा दोनों की प्रवृत्तियाँ भिन्न लिंग जैसी हो सकती हैं। नारी पुरुष की तरह कठोर व्यवहार करने वाली और नर जनखों जैसे स्त्री स्वभाव का हो सकता है। यौन आकांक्षाएँ भी विपरीत वर्ग जैसी हो सकती हैं। इतना ही नहीं, कई बार तो इन हारमोनों का उत्पात ऐसा हो सकता है कि प्रजजन अंगों की बनावट ही बदल जाए। ऐसे अनेक आपरेशनों के समाचार समय-समय पर सुनने को मिलते रहते हैं जिनमें नर से नारी की और नारी से नर की जननेंद्रियों का विकास हुआ और फिर

शल्यक्रिया के द्वारा उसे तब तक के जीवन की अपेक्षा भिन्न लिंग का घोषित किया गया। इसी नई परिस्थिति के अनुसार उनने साथी ढूँढ़े, विवाह किए और गृहस्थ बसाए।

लिंग परिवर्तन की जितनी घटनाएँ हम सुनते अथवा अखबारों में पढ़ते हैं, उनमें होता मूलत: यही है कि मनुष्य की आकांक्षाएँ और अभिरुचियाँ जिधर गतिशील होती हैं, उसी तरह की मनोभूमि लिंग संबंधी बनती चली जाती हैं। कोई नारी यदि नर के प्रति अत्यधिक आसक्त होती है, उसी के सान्निध्य एवं चिंतन में निरत रहती है, तो उसका अंत:करण उसी ढाँचे में ढलता और तादात्म्य होता चला जाएगा। कालांतर में वह आकांक्षा उसे स्वयं नर के रूप में परिणत कर सकती है। इसी प्रकार कोई नर यदि नारी के चिंतन और सान्निध्य में अतिशय रुचि लेता है तो उसकी चेतना नारी वर्ग में परिणत होने लगेगी और वह उस प्रवृत्ति की तीव्रता के अनुरूप देर में या जल्दी लिंग परिवर्तन कर लेगा। इसमें एकाध जन्म की देरी भी हो सकती है। लिंग परिवर्तन की ऐसी घटनाओं में, जिनमें नारी नर के रूप में और नर नारी के रूप में परिणत किए गए उनमें शारीरिक या मानसिक कारण नहीं होते वरन अंतश्चेतना का गहन स्तर के कारण शरीर ही इस प्रकार की पृष्ठभूमि विनिर्मित करता है। नपुंसक वर्ग की भी ऐसी ही स्थिति है। इसे परिवर्तन का मध्य-स्थल कह सकते हैं।

समलिंगी आकर्षण से लेकर सहवास तक की अनेक घटनाएँ देखने-सुनने में आती रहती हैं। इसमें भी वह अतृप्त आंतरिक आकांक्षा ही उभरती है। दो नारी यदि नर रूप में विकसित हो रही होंगी, तो उनमें नर के प्रति आकर्षण की विद्यमान मात्रा स्त्री रति की अपेक्षा पुरुष रति में रस एवं तृप्ति अनुभव करेगी और उनमें परस्पर घनिष्ठता बढ़ती जाएगी। इस प्रकार दो नर यदि नारी रूप में विकसित

हुए हैं, तो उनका पूर्वाभ्यास नारी के प्रति आकर्षण बनाए रहेगा और वे दो-दो नारियाँ परस्पर मिलन का अधिक आनंद अनुभव करेंगी। यह विपर्यय दोनों कारणों से हो सकता है। विकसित होती हुई आकांक्षा भी अपनी अतृप्ति का समाधान कर सकता है। इसी प्रकार विकास आगे चल पड़ा है। शरीर बदल गए हैं पर पूर्व मनोवृत्ति में भिन्न लिंग के संस्कार अभी भी प्रबल हैं तो वे भी बार-बार वैसी ही उमंगें उठाकर समलिंगी संपर्क में अधिक आकर्षण अनुभव कर सकते हैं।

इसी प्रकार वियोग, विश्वासघात, अपमान जैसे आघात अंतःकरण की गहराई तक चोट पहुँचा दें, तो युवावस्था में भी भले-चंगे हारमोन स्रोत सूख सकते हैं। इसके विपरीत यदि रसिकता की लहरें लहराती रहें तो वृद्धावस्था में भी वे यथावत गतिशील रह सकते हैं। जन्मांतरों की रसानुभूति बाल्यावस्था में भी प्रबल होकर उस स्तर की उत्तेजना समय से पूर्व ही उत्पन्न कर सकती है।

काम-क्रीड़ा शरीर के द्वारा होती है; कामेच्छा की मन में उत्पत्ति होती है। पर इन हारमोनों की जटिल प्रक्रिया न शरीर से प्रभावित होती है और न मन से। उसका सीधा संबंध मनुष्य की अंतश्चेतना से है, इसे आत्मिक स्तर कह सकते हैं। जीवात्मा में जमे कामबीज जिस स्तर के होते हैं तदनुरूप शरीर और मन का ढाँचा ढलता और बनता-बिगड़ता है। हारमोनों को भी प्रेरणा, उत्तेजना वहीं से मिलती है। इसी प्रकार हारमोन्स के द्वारा अन्यान्यों को प्रभावित करने के मानवीय प्रयास विफल रहे हैं।

जहाँ तक खोज का विषय है, उन अंतःस्रावी ग्रंथियों का उनसे प्रवाहित होने वाले रसों का स्वरूप समझ लिया गया है और उनका रासायनिक विश्लेषण कर लिया गया है। पर उनकी असाधारण

महत्ता और असाधारण हरकत कर कुछ कारण नहीं जाना जा सका। इतना ही नहीं, उनके नियंत्रण का भी कोई उपाय हाथ नहीं लगा है। यह मोटा और भोंडा तरीका है कि उसी स्तर के रसायन बाहर से पहुँचाकर उन स्रावों की कमी-वेशी के परिणामों को रोकने का प्रयत्न किया जाए। इतना ही बन पड़ा है सो किया भी गया है। अन्य जीवों से प्राप्त करके अथवा रासायनिक पद्धति से विनिर्मित करके उन रसों को व्यक्ति के शरीर में पहुँचाकर यह प्रयत्न किया जाता है कि विकृतियों पर नियंत्रण किया जाए। उसका लाभ होता तो है, पर रहता क्षणिक ही है। भीतर का उपार्जन बंद हो जाए तो बाहर से पहुँचाई मदद कब तक काम देगी? इसी प्रकार जमीन फोड़कर कोई स्रोत निकल रहा हो, तो उसे एक जगह से बंद करने पर दूसरे छेद से फूटेगा। यह तो तात्कालिक या क्षणिक उपचार हुआ। बात तब बनती है, जब उत्पादन के केंद्र स्वतः ही अपने स्रावों को घटा या बढ़ा लें। उपचार का उद्देश्य तो तभी पूरा हो सकता है।

पुराने जमाने में भस्में तथा रसायनें खिलाकर मृत या स्वल्प कामेच्छा को पुनर्जाग्रत करने का प्रयत्न किया जाता था। यह प्रयास भी नशे में उत्पन्न क्षणिक उत्तेजना जैसे ही सिद्ध हुए। जब से हारमोन प्रक्रिया का ज्ञान हुआ है तब से यौन ग्रंथियों के रसों को पहुँचाने से लेकर बंदर एवं कुत्ते की ग्रंथियों का आरोपण करने तक का क्रम बराबर चल रहा है। आरंभ में उससे तत्काल लाभ दीखता है पर वह बाहर का आरोपण देर तक नहीं ठहरता।

ये प्रयास विफल इसलिए रहे कि इन सूक्ष्म रस-स्रावों के मूल उद्भूत केंद्र अचेतन मन एवं शारीरिक प्रतिक्रियाओं में परस्पर कोई संबंध स्थापित नहीं किया गया। आरोपण, प्रतिरोपण, इंजेक्शन तो

बाह्योपचार हैं। शरीर में छिपे सूक्ष्मतम घटक इन हारमोन्स के स्राव में न्यूनाधिकता क्यों व किस प्रकार होती है; यह अभी भी अविज्ञात है।

हारमोन ग्रंथियों से अत्यंत स्वल्प मात्रा में निकलते रहने वाले स्राव ऐसे महत्त्वपूर्ण हैं, जो केवल शारीरिक ही नहीं मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करते हैं और उनमें आश्चर्यचकित करने वाले उतार-चढ़ाव उत्पन्न करते हैं। ये हारमोन चेतन या अचेतन मस्तिष्क से भी प्रभावित नहीं होते। इनको घटाने-बढ़ाने में एक शरीर से दूसरे शरीर तक पहुँचाने के परंपरागत प्रयास प्रायः असफल ही हो चुके हैं। एक शरीर से निकालकर दूसरे शरीर में प्रवेश कराने पर भी इन हारमोनों की वृद्धि न्यूनता अथवा नियंत्रण-संतुलन नहीं प्राप्त किया जा सकता। लगता है कि इनका उद्भव और विकास ही शरीर की पुष्टि, अभिवृद्धि, सुंदरता और संतुलन के लिए ही होता है । जीवन की सूक्ष्मतम सत्ता बड़ी विलक्षण और रहस्यपूर्ण है, इसमें कोई संदेह नहीं।

सामान्य हारमोन्स से भिन्न वे सूक्ष्म रस-स्राव हैं जिन्हें स्नायु रसायन कहा जाता है। सूक्ष्म मस्तिष्कीय हलचलों के लिए उन्हें उत्तरदायी माना जाता है। स्नायु रसायन मस्तिष्क एवं सुषुम्ना के नाड़ी संस्थान में क्रियाशील वे रस-स्राव हैं जो सक्रिय होने पर इंद्रियों में सीमाबद्ध मानसिक चेतना को अतींद्रिय स्तर तक पहुँचा देते हैं। न्यूरोह्यूमरल सिक्रीशन्स के नाम से जाने, जाने वाले ये रस-स्राव वैज्ञानिकों के द्वारा अभी-अभी जाने-पहचाने गए हैं किंतु इनकी प्रतिक्रियाओं का अतींद्रिय क्षमता के रूप में उभार शास्त्रवचनों एवं प्रतिपादनों में देखने को मिलता है। साधना का स्तर जैसे-जैसे सूक्ष्म प्रखर होता जाता है, सीढ़ियाँ उतनी ही ऊँची साधक चढ़ता चला जाता है। विज्ञानमयकोश जागरण की साधना ऐसी ही है, जो इन रस-स्रावों से संबंधित है।

विज्ञान का अर्थ कामकाजी नहीं, विशिष्ट ज्ञान है। असामान्य प्रज्ञा, प्रतिभा को उभारने वाली परत निस्संदेह विलक्षण होती है। यह कार्य उन 'न्यूरो ट्रांसमीटर्स' के जिम्मे आता है जो सामान्य अवस्था में तो सिनेप्सों पर स्नायु संचार भर की भूमिका निभाते हैं। किंतु उत्तेजित किए जाने पर प्रसुप्त केंद्रों, विलक्षण प्रतिभा केंद्रों को भी जगाने की सामर्थ्य रखते हैं। एसीटाइल कोलोन, मारफीन सलेक्टिव ओपिएट्स (एडर्नफन्स), एन्केफेलीन, एडीनोसिन समूह, गाबा समूह, सिरोटोनिन (5 HT), अल्फा एड्रीनर्जिक, बीटा एड्रीनर्जिक एवं मस्केरीनिक कोलीनर्जिक समूह के नाम से ये सारे मस्तिष्क एवं स्नायुतंत्र में संव्याप्त हैं। मस्तिष्कीय सत्व के दस लाख में से एक भाग का प्रतिनिधित्व करने वाले ये सूक्ष्म रसायन मन की अचेतन, चेतन व सुपर चेतन परतों के उत्तेजन के द्वारा विलक्षण प्रतिभाओं, आविष्कार बुद्धि, स्वप्नों के माध्यम से संदेश आदि के रूप में अपनी सक्रियता का परिचय देते रहते हैं।

क्या हारमोन क्षेत्र पर नियंत्रण हो सकता है? क्या उनकी विकृति गतिविधियों को संतुलित किया जा सकता है? क्या इच्छा या आवश्यकता के अनुरूप इन्हें घटाया या बढ़ाया जा सकता है? इसका उत्तर 'हाँ' में दिया जा सकता है। पर यह समझ लेना चाहिए कि इसके लिए प्रयास वे करने पड़ेंगे जो अंतश्चेतना को गहराई तक प्रभावित करते हैं। शारीरिक आहार-विहार या मानसिक तर्क-वितर्क या उपचारों के द्वारा उस गहराई तक नहीं पहुँचा जा सकता, जहाँ इन हारमोनों का मूलभूत उद्‌गम है। केवल आध्यात्मिक साधनाओं का मार्ग ही ऐसा है जो शरीर और मन को प्रभावित करके हारमोनों को ही नहीं और भी कितने ही महत्त्वपूर्ण आधारों में हेर-फेर करके मनुष्य को सामान्य से असामान्य बना सकता है।

हारमोन स्रावों की घटोत्तरी-बढ़ोत्तरी का आहार-विहार से कोई सीधा संबंध नहीं है। इसी प्रकार उनका सचेतन मन से भी कोई संबंध अभी तक स्थापित नहीं किया जा सका। आनुवंशिकी विज्ञान में पैतृक जीनों से भी उनकी कुछ संगति नहीं बैठती, अचेतन मन से कोई संग्रहीत संस्कार उन्हें प्रभावित करता हो, ऐसी भी तुक किसी प्रकार नहीं बैठती। फिर अकारण इन अंत:स्रावों की अकस्मात क्यों घटोत्तरी आरंभ हो जाती है ? इसका यथार्थ कारण ढूँढ़ना हो तो हमें अधिक गहराई तक जाना पड़ेगा। इसके आधार मनुष्य की सूक्ष्मतम चेतना से संबंधित हैं। विराट में संव्याप्त चेतना के विशाल महासागर का एक घटक मानवीय काया भी है। पचहत्तर हजार अरब जीवकोशों के समुच्चय से बनी यह काया जितने सूक्ष्म घटक से प्रभावित-अनुप्राणित होती है। उससे यह सत्यापित होता है कि सूक्ष्म के बल पर ही स्थूल का क्रिया-कलाप चल रहा है। भारतीय मनोविज्ञान एवं आर्यदर्शन के प्रतिपादन सूक्ष्म व कारण शरीर की महत्ता प्रतिपादित करते हुए अणु में विभु, लघु में विराट की मान्यता को सही ही ठहराते हैं।

❒

# रहस्यमय, अद्भुत हैं सूक्ष्म के क्रिया-कलाप

मानवीय काया की संरचना करने वाले जीवकोश जितने सूक्ष्म हैं उससे भी सूक्ष्मतम एवं रहस्यमय क्रिया-कलाप उन गुणसूत्रों के हैं जो नाभिक के अंदर विद्यमान होते हैं। वे ही पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होने वाले गुणों का निर्धारण करते हैं एवं व्यक्तित्व की संरचना में महती भूमिका निभाते हैं। मात्र नाभिक ही नहीं वरन जीवकोश का अंग-प्रत्यंग भी विलक्षणता से अभिपूरित है। इसकी झिल्ली साइट्रोप्लाज्म रूपी द्रव्य में तैरते विभिन्न सब मालीक्यूलर कण जीवकोश की परमाणु की अंतः संरचना से इतना मेल खाते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। यह समानता अकारण नहीं हो सकती। ब्रह्मांड की संरचना जिन परमाणुओं से हुई है उन्हीं की प्रतिच्छाया को मानवीय कायारूपी विराट में समाया देखा जा सकता है। यह सब देख-समझकर लगता है कि सृष्टि में सब कुछ सुव्यवस्थित, विधिवत विनिर्मित है।

जीवकोश की सभी संरचनाओं को एक कलाकार की दृष्टि से देखा जाए तो इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप में देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो लाखों मील लंबी नहर अथवा एक विशाल महासागर है, जिसमें धरती पर उठे हिमालय, आल्पस पर्वत की तरह कोशिकाओं के अंश उठे हुए दिखाई पड़ते है। ये 'सब सेल्युलर आर्गेनेलीज' इस प्रकार प्रतीत होती हैं मानो प्रकृति ने अपना सारा सौंदर्य एक विशाल लैंडस्केप पर बिखेर दिया हो। नेत्र आश्चर्यचकित हो उठते हैं कि एक परमाणु के अंदर यह कैसी हलचल व कैसा विराट साम्राज्य विद्यमान है ? इस सबको देखकर लगता है कि इन सबका निर्माता व संचालनकर्त्ता कोई अत्यंत कुशल इंजीनियर होना चाहिए।

सूक्ष्म स्तर पर प्राण वस्तुतः है क्या ? क्या इसे विज्ञान की भाषा में समझाया जा सकता है ? यह प्रश्न हर जिज्ञासु के मन में सहज ही उठता है। जब शरीर की प्रत्येक क्रिया का संचालन प्राण के द्वारा होने की बात कही जाती है तो इस प्राणतत्त्व का आकलन भी संभव होना चाहिए। योग ग्रंथों में पंचप्राण एवं पाँच उप प्राणों की चर्चा की गई है। इस प्राण विज्ञान से संगति बिठाते हुए शरीरविज्ञानी शारीरिक अंतरंग क्रियाओं की व्याख्या विद्युत संचार क्रम के साथ करते हैं। हर जीवकोश में स्नायुमंडल में विद्युत संवहन प्रक्रिया आयन डिस्चार्ज पद्धति के अनुसार होती है। जो कोशिकाएँ संचार प्रक्रिया में भाग लेती हैं, उनमें ऋण आयन बाहर जाते व धन आयन अंदर आते तथा फिर इसकी विलोम प्रक्रिया होती रहती है। वैज्ञानिक भाषा में इसे डिपोलेराइजेशन-रिपोलेराइजेशन कहते हैं। प्राण-संवेदन का यह वैज्ञानिकीकरण है।

ज्ञानतंतुओं में विद्युत संचार तो होता ही है, साथ ही साथ रासायनिक क्रिया-कलाप भी चलते रहते हैं। जिसमें सोडियम का बाहर जाना एवं पोटेशियम की अंदर आने की प्रक्रिया होती रहती है। प्रवाहित विद्युत आवेग की गति होती है ३०० फुट प्रति सेकंड। शरीर में स्नायु तंतुओं का सूक्ष्म नेटवर्क फैला हुआ है। क्षणभर में जरा सा उत्तेजन होते ही विद्युत आवेग निर्दिष्ट स्थान पर मस्तिष्क से आदेश पाकर पहुँच जाता है।

सोडियम पोटेशियम साइकल, पोटेशियम पंप, ए० टी० पी० व ए० डी० पी० सिस्टम, साइक्लीक ए० एम० पी० तथा प्रोस्टी ग्लैंडीन्स आदि के माध्यम से शरीर की सूक्ष्म अंतरंग प्रक्रियाओं का भिन्न-भिन्न स्थानों पर होना बताया जाता रहा है। सेल्यूलर माइक्रोबायोलॉजी पर जितनी शोधें हुई हैं, और भी सूक्ष्मतम जानकारी हस्तगत होती जा रही है।

विद्युत रासायनिक सिद्धांतों को मूल आधार मानते हुए आयन्स के आधार पर ही संचार संवहन की मुख्य भूमिका मानी गई है। जब यह प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है, तो ऋण व धन आवेश युक्त आयन्स मिलकर विद्युतीय दृष्टि से न्यूट्रल अणु बनाते हैं। वस्तुतः मानवीय काया के श्वसन, पाचन, शोधन, निष्कासन, विकास, चयापचय आदि सभी प्रक्रियाएँ इसी आधार पर चल रही हैं। तत्त्व दृष्टि बताती है कि सारे कायसंस्थान में प्राणतत्त्व की सत्ता और सक्रियता सर्वत्र विद्यमान है।

वैज्ञानिकों ने जीवकोशों का विस्तृत अध्ययन कर पाया है कि इन्हें आवरण में लपेटे झिल्ली, जिसे सेल्युलर मेंब्रेन कहते हैं, सर्वगुणसंपन्न हैं। उसमें इतना विवेक भी है कि किसे अंदर प्रवेश करने देना है, किसे नहीं ?

कोशिका झिल्ली पौधों और बैक्टीरियाज से अपेक्षाकृत अधिक मोटी और कड़ी होती है, यह एक प्रकार की निर्जीव चहारदीवारी है। सूक्ष्म जलीय जगत उसके अंदर बंद है। गहराई से देखने पर हम पाते हैं कि हर सेल की झिल्ली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह भीतर केवल उन्हीं तत्त्वों को जाने देती है, जिनके बारे में उसे नाभिक से निर्देश मिलते हैं। जीवकोश में रेशों एवं मजबूत तंतुओं का एक जाल सा बिछा है। जिसे क्रोमेटिन नेट वर्क कहते हैं। जब एक कोशिका का अनेक में विभाजन होता है तो यह माइटोसिस-मिओसिस की विभाजन प्रक्रिया के द्वारा होता है एवं उस समय ये क्रोमेंटिन तंतु ही प्रत्यावर्त्तन, पृथक्करण एवं पुनर्व्यवस्थापन की भूमिका निभाते हुए कोश के अंदर एक सामूहिक नृत्य करते हैं। इस कलाकारिता से अभिपूरित नृत्य की गति का मुकाबला आज के आधुनिक डिस्को डांसर भी नहीं कर सकते।

जीवकोश के बारे में इतना कुछ जाना जा चुका है, फिर भी वैज्ञानिक कहते हैं—"हम जो कुछ जानते हैं, उसकी तुलना में अविज्ञात अभी बहुत कुछ है। वही जीवन की कुंजी है।"

सूक्ष्मदर्शी यंत्रों द्वारा कोशिका झिल्ली के भीतर की संरचना को बड़े आश्चर्य के साथ देखा जाता है। यह झिल्ली कोशिका के अंदर समस्त इकाइयों की अपेक्षा अधिक सक्रिय इकाई है, किंतु उसकी सक्रियता भीतर घुसे हुए नाभिक (न्यूक्लियस) की इच्छा के कारण है। न्यूक्लियस ही वह चेतना और केंद्रीभूत सत्ता मानी जा रही है, जिस पर कोशिका का सारा क्रिया-व्यापार चलता है। यह एक अत्यंत सूक्ष्म, पर विराट जगत का प्रतिनिधि है। उसी को देखकर आइन्स्टीन ने कहा था कि यह क्षितिज भी अंडाकार (कर्व) स्थिति में है। जब लोगों ने पूछा कि उसके बाद क्या है तो उसने कहा, "कुछ नहीं"। यह संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है कि यह संसार जिसकी सीमा अनंत है, वह भी घिरा हुआ अर्थात असीम है, सीमा रहित है।

वस्तुतः जीव-विज्ञान के अनुसंधानों में भी कोशिका (सेल्स) को सबसे अधिक आश्चर्यजनक रूप में देखा गया है। उसे वैज्ञानिक ब्रह्मांड का छोटा सा नक्शा मानने लगे हैं। उसके अंदर सूक्ष्म रूप में वह सब कुछ है जो इन स्थूल आँखों से दिखाई देता है। 'रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मांड' वाली तुलसीदास की उक्ति को विज्ञान ने कोशिका के रूप में अब सत्य मान लिया है।

अमेरिका की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक डॉ० जेम्स वाट्सन और इंग्लैंड की कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के डॉ० फ्रान्सिस क्रिक ने पहली बार बताया कि जीवित कोश के नाभिक (न्यूक्लियस) में ही ज्ञान व संस्कार, गुणसूत्र (क्रोमोसोम) पाए जाते हैं। यह पेड़ीदार और बीच-बीच डोरी में लगी गाँठों की तरह होते हैं। इन गाँठों को

जीन्स (संस्कार सूत्र) कहते हैं। नाभिक प्रकाशतत्त्व है और उसी में जीवनतत्त्व होना उसका प्रकाशपुंज होना प्रमाणित करता है। यही निकल जाने से शरीर निष्प्राण हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वह पदार्थ से पृथक अस्तित्व वाला है।

अब तक जो अध्ययन किया गया है उससे यही निष्कर्ष निकाला गया कि गुणसूत्रों के घटक 'जीन्स' विद्युत शक्ति से भरपूर छोटे पैकेट्स के समान हैं। अनेक अमीनों अम्लों से इनकी रचना हुई है जो स्वयं अत्यंत सूक्ष्म एवं समर्थ घटक हैं। दो ही अम्ल ऐसे हैं जिनके बारे में अभी वैज्ञानिकों को विस्तृत जानकारी है। ये हैं, डिसॉक्सीरीबो न्यूक्लीक अम्ल (डी० एन० ए०) एवं रीबो न्यूक्लीक अम्ल (आर० एन० ए०) एडीनिन, ग्वानीन, लाइसीन, साइटोसीन के रूप में और भी सूक्ष्मतम ये चार इनके मूल घटक माने जाते हैं।

कृत्रिम जीन्स की संरचना कर पाने में भी वैज्ञानिक अब सफल हो गए हैं। इसका श्रेय सबसे पहले एक भारतीय को ही जाता है। अमेरिका में कार्यरत वैज्ञानिक डॉ० हरगोविंद खुराना ने संश्लेषण कर यह सिद्ध कर दिया कि जीन्स के सूक्ष्म अमीनो अम्लों को संघटित कर गुणसूत्रों में फेरबदल संभव है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि शरीर के अंग-प्रत्यंग की जटिल संरचना से लेकर अनेक स्वभावगत विशिष्टताओं, गुणों एवं असामान्यताओं के विकास की जीन्स में आश्चर्यजनक क्षमता है। रोग भी जन्म लेते हैं, तो पिंड के इस छोटे से घटक में असामान्यता आना उसका कारण होती है। अन्नमयकोश जो सूक्ष्मशरीर का एक अंग है के एक छोटे से घटक कोशिका के न्यूक्लियस में पाए जाने वाले डी० एन० ए०, साइटोप्लाज्म में पाए जाने वाले आर० एन० ए० रूपी नगण्य आकार के ये विद्युतमय पैकेट मनुष्य के विचारों, भावनात्मक विशेषताओं की विविधता के लिए उत्तरदायी माने जा सकते हैं।

'जीन्स' जिन्हें आज का वैज्ञानिक जीवन की इकाई मानता है, गुणसूत्रों के ही एक अत्यंत सूक्ष्म अवयव हैं। जिस प्रकार एक डोरे में थोड़ी-थोड़ी दूर पर गाठें लगा देते हैं उसी प्रकार इन गुणसूत्रों में भी गाँठें लगी हुई हैं। इन गाँठों को ही 'जीन्स' कहते हैं। एक कोशिका के जीन्स जो कुंडली मारे बैठे रहते हैं उन्हें यदि खींचकर सीधा कर दिया जाए तो ५ फीट तक लंबे पहुँच सकते हैं। हमारा शरीर चूँकि कोशिकाओं की ईंटों से बना हुआ होता है और एक युवक के शरीर में ये कोशिकाएँ ६०० खरब तक होती है इसलिए यदि संपूर्ण शरीर के 'जीन्स' को खींचकर रस्सी बनाई जाए तो वह इतनी बड़ी होगी, जिससे सारे ब्रह्मांड को नाप लिया जाना संभव हो जाएगा।

सन् १९६२ में इन तीन वैज्ञानिकों को जब इस संबंध में नोबुल पुरस्कार दिया गया तो उन्होंने ही कहा, "सूत्र हाथ में आ गया है सूत्रधार नहीं; संभव है कि एक दिन वह भी हाथ लग जाएगा।" कोई आश्चर्य नहीं कि आत्मविश्वास से भरकर की गई वैज्ञानिकों की यह गर्वोक्ति समय को कसौटी पर सही उतरे सूक्ष्मतम का शोध अनुसंधान ही इस जटिल गुत्थी का हल निकाल सकेगा। उस पर वैज्ञानिकों को विश्वास होता जा रहा है।

प्रकाश रूप आत्मा की लघुतम सत्ता में भी विराट विश्व संव्याप्त है। ५ फीट ६ इंच लंबे १०० पौंड भार के शरीर में जो कुछ है आश्चर्य नहीं, बीज और संस्कार रूप से वह सब एक वीर्यकोश में विद्यमान रहता है। शरीरशास्त्रियों का मत है कि कोश स्थित गुणसूत्र (क्रोमोसोम) और संस्कार सूत्र (जीन्स) में वह सबके सब शारीरिक और मानसिक लक्षण एवं विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं, जो आगे चलकर मनुष्य शरीर में परिपक्व होने वाली होती हैं। बच्चे की छह उँगलियाँ होंगी या दो जुड़ी हुई, आँख नीली होंगी

या पीली, ये सारे लक्षण प्रजनन कोशों के गुणसूत्रों में विद्यमान रहते हैं।

प्रत्येक जीन युग्म शरीर के किसी विशेष 'करेक्टरिस्टिक्स' के विकास का निर्देशन करता है। आँखें भूरी हैं या नीली; बाल घने काले हैं या हलके स्वर्णाभ हैं अथवा बाल घुँघराले हैं या सीधे; सामान्य बाल हैं या गंजापन है; दृष्टि सामान्य है या रतोंधी ज्यादा होने की संभावना है; श्रवण-शक्ति सामान्य है या जन्मजात बहरापन है; रक्त सामान्य है या कि 'हीमोफीलिया' का दोष है; रंग-बोध स्पष्ट है या वर्णांधता का दोष है; उँगलियों या अँगूठों की संख्या सामान्य है या कम-अधिक है; किसी जोड़ में कोई उँगली छोटी-बड़ी तो नहीं है; सभी अवयव सामान्य हैं या कुछ अवयव विरूप हैं आदि सभी शारीरिक विशिष्टताएँ जीन-युग्मों पर ही निर्भर करती हैं।

सूक्ष्मतम में—पिंड में ही ब्रह्मांड का—विराट का निवास है एवं लघुतम में महत्तम की असीम संभावनाएँ विद्यमान हैं। इस पर श्रुति में ऋषिगणों ने अपने उद्‌गार व्यक्त किए हैं।

ऋषिगण भी वैज्ञानिक थे। इन आर्ष वैज्ञानिकों के कथन की सत्यता का सर्वप्रथम किंग्स कालेज लंदन के डॉ० विल्किन्स ने अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि कोशिका अपने आप में उतनी आश्चर्यजनक नहीं है जितनी उसके अंदर के दूसरे कण और क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से नाभिक या केंद्रक (न्यूक्लियस) और उसमें लिपटे हुए क्रोमोसोम, स्पूतनिक की तरह कोशिका के आकाश में स्थित 'सेन्टोसोम' जो कोशों के विकास में सहायक होता है, पारदर्शी गुब्बारे जैसा वह भाग जो भोजन को शक्ति में बदलता है, वह भी एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक हैं। न्यूक्लियस कोशिका का वह गुंबदाकार भाग, जहाँ से पूरे शरीर का सूत्र-संचालन होता है। गुणसूत्र क्रोमोसोम की जटिलता और भी अधिक है क्योंकि उन

पर व्यक्ति के गुण, शारीरिक विकास और आनुवंशिकता आधारित है, इसलिए इनकी खोज में वैज्ञानिक तीव्रता से जुट गए। सूक्ष्मतम की खोज का उनका यह प्रयास सफल हुआ एवं वे यह कह सकने में समर्थ हो सके कि उन्होंने जीवन की कुंजी को पा लिया है।

अब इलेक्ट्रान के भीतर न्यूट्रान और नाभिक (न्यूक्लियस) के भीतर अनेक नाभिकों (न्यूक्लिआई) की संख्या भी निकलती चली आ रही है। हमारे ऋषिग्रंथों में इन्हें 'सर्गाणु' तथा 'कर्षाणु' शब्दों से संबोधित किया गया है। विभिन्न तत्त्वों के परमाणुओं की इस सूक्ष्म शक्ति को देवियों की शक्ति कहा गया है। यों सामान्य तौर पर तत्त्व पाँच ही माने गए है, किंतु 'वेद निदर्शन विद्या' में यह स्पष्ट उल्लेख है कि सोना, चाँदी, लोहा, अभ्रक आदि ठोस पृथ्वी के ही विभिन्न रूपांतर हैं। इसी प्रकार वायु के ४९ भेद मिलते हैं। अग्नियों और प्रकाश के भी भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन मिलता है। शाक्त साहित्य में पदार्थ शक्तियों के सैकड़ों नाम मिलते हैं। हर शक्ति का एक स्वामी देवता माना गया है और उसे शक्तिमान शब्द से संबोधित किया गया है। अब पदार्थ के साथ जिस प्रति पदार्थ की कल्पना की गई है, वह प्रत्येक अणु में प्रकृति के साथ पुरुष की उपस्थिति का ही बोधक है।

गर्भाधान के समय शुक्राणु का आकार एक क्यूबिक मिलीमीटर का दस लाखवाँ भाग मात्र होता है। उसी के भीतर शारीरिक और मानसिक दृष्टि से एक पूर्ण मानव उकड़ू-मुकड़ू बनकर बैठा रहता है। इस सारी दुनिया में प्रायः पाँच औंस रेडियम होने का अनुमान लगाया गया है, पर इतने से ही उसकी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता अगले २५ हजार वर्ष तक मजे में पूरी होती रहेगी। समग्र शक्तिपुंज का एक अंश इस छोटी सी रेडियम की मात्रा में

उसी प्रकार विद्यमान है, जिस प्रकार शुक्राणु में मानवीय काया का ढाँचा निहित होता है।

किसी वृक्ष के बीज की यह मज्जा (पिथ) की प्रेरणा ही ऊपर तने और नीचे जड़ के रूप में फूटती है। जड़ के इस क्रियाशील भाग को सूक्ष्मदर्शी से देखें तो बिना बढ़े हुए वृक्ष का आकार-प्रकार दिखाई दे जाता है। एक विलक्षण संसार उसमें दिखाई दे जाता है। यह आश्चर्य ही है कि मज्जा का सर्वेक्षण करके यह बताया जा सकता है कि वृक्ष की जड़ें इतनी होंगी, इतनी मोटाई लेकर इस गहराई में अमुक-अमुक दिशा को बढ़ेंगी। इसी प्रकार तना कितना मोटा, कितनी शाखों वाला, किधर को मुड़ा, कितनी डालियों और कितने पत्तों वाला होगा? इस सबका पूर्वाभास इस हिस्से के सूक्ष्म दर्शन के द्वारा किया जा सकता है। प्रश्न उन पत्तों और कोशों का नहीं, जो विकास की चेष्टाएँ करती हैं। सूझने वाली बात वह अंतश्चेतना है जो आत्मप्रेरणा से विकसित होती और अपने आप को बढ़ाकर एक भरे-पूरे वृक्ष के रूप में परिणत कर देती हैं। एक पूरे वृक्ष का नक्शा एक बीज में भरा पड़ा है। यह पढ़कर लोग आश्चर्य ही करेंगे।

इतना विशाल वटवृक्ष जिस बीज से अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित और बड़ा हुआ, वह आधे सेंटीमीटर व्यास से भी छोटा घटक रहा होगा। उस बीज की चेतना ने जब विस्तार करना प्रारंभ किया तो तना, तने से डालें, डालों से पत्ते, फल, फूल, जड़ें आदि बढ़ते चले गए।

मनुष्य अपने चश्मे से अपनी दृष्टि एक सीमित परिकर तक ही दौड़ा पाता है जबकि यह सृष्टि जिसमें वह रह रहा है, वह असीम-अनंत है एवं स्वयं में अपरिमित संभावनाएँ विद्यमान हैं। यदि ज्ञान चेतना को इस सूक्ष्म में स्थिर कर उस अनंत का ध्यान

किया जाए तो मानव स्वयं को समष्टिगत विश्वव्यापी चेतना के रूप में ही पाएगा। इसी का नाम आत्मानुभूति है। परब्रह्म से साक्षात्कार यही है।

## अदृश्य जीवधारियों का अलौकिक संसार

निखिल ब्रह्मांड में सूक्ष्म सत्ता का परिचय देने के निमित्त एक और अदृश्य जीवधारियों का समुदाय क्रियाशील रहता है, जिन्हें जीवाणु-विषाणु वर्ग में शुमार किया जाता है। ये अपनी उपस्थिति का परिचय अपने क्रिया-कलापों, प्रतिक्रियाओं के कारण देते रहते हैं, किंतु दिखाई नहीं पड़ते। इन्हें परमाणु के समकक्ष रखकर तुलनात्मक सर्वेक्षण किया जाए तो सूक्ष्मता का अनुमान लगाया जा सकता है।

सूर्य-चंद्रमा आदि ग्रह-नक्षत्र जितने बड़े हैं 'अमीबा' उतना ही छोटा ०.८ मिलीमीटर का जीव है। जीवाणु विज्ञान के अनुसार सूक्ष्म जीवाणु १/२५००० इंच का बाल की नोक से भी छोटा होता है। वैक्टीरिया (जीवाणु) में भी अपनी तरह की चेतना गुण-कर्म-स्वभाव विद्यमान हैं और अपनी सृष्टि में वह संतुष्ट होने के साथ ही उसकी गति ऐसी है, जो एक सेकंड में पृथ्वी के ओर-छोर की यात्रा मजे में संपन्न कर सकता है। जो जितना छोटा है उतना ही गतिमान।

सारा वायुमंडल जिसे हम बायोस्फीयर कहते हैं, जीवन से भरा हुआ है। लेकिन ध्यान से देखने पर पता चलता है कि वायुमंडल ही नहीं जीवन से रिक्त कोई स्थान नहीं। प्रसिद्ध डच व्यापारी एन्टानवान लीवेनहीक को जब भी अवकाश मिलता, वह शीशों के कोने रगड़-रगड़ कर लेन्स बनाया करता। उसने एक बार एक ऐसा लेन्स बनाया जो वस्तु को २७० गुना बड़ा करके दिखा सकता था। उसने पहली बार गंदे पानी और सड़े अन्न में हजारों जीवों की सृष्टि देखी। कुतूहलवश एक बार उसने वर्षा का शुद्ध जल एकत्र किया।

उसकी इच्छा यह जानने की थी कि क्या शुद्ध जल में भी कीटाणु होते हैं और वह यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसमें भी जीवाणु उपस्थित थे। उसने अपनी पुत्री मारिया को बुलाकर एक विलक्षण संसार दिखाया। यह जीवाणु जल में तैर ही नहीं रहे थे, तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करते हुए वह दिखा रहे थे कि उनमें ये इच्छाएँ, आकांक्षाएँ मनुष्य के समान ही हैं; भले ही मनुष्य जटिल कोश प्रणाली वाला जीव क्यों न हो! पर चेतना के गुणों की दृष्टि से मनुष्य और उन छोटे जीवाणुओं में कोई अंतर नहीं था। ये जीवाणु हवा से पानी में आए थे।

सन् १८८३ में पौधों की संरचना का परीक्षण करते समय वैज्ञानिक माथियास शेलिडेन ने देखा कि पौधे भी कोशिकाओं से बने हैं और ये कोशिकाएँ भी बड़े जीव के भीतर एक जीवित जीव है। इस प्रकार हर योनिधारी का शरीर ब्रह्मांड है और उनमें रह रहे अनेकों चेतन कोश जीव अपनी वासना के अनुसार काम करते हैं। हर कोश में विराट ब्रह्मांड की बात विज्ञान स्वीकार करता है।

अब तक वैज्ञानिक जीवन की सूक्ष्मतम सत्ता के अनुसंधान कार्य में जीवन की ऐसी इकाई का पता नहीं लगा पाए हैं जो शाश्वत एवं अंतिम हो, जिसके बाद किसी भी सूक्ष्मतम की संभावना हो। फिर अभी तक माइक्रोबायोलॉजी के क्षेत्र में जो अनुसंधान कार्य हुआ है, उससे प्राप्त निष्कर्ष कम आश्चर्यजनक नहीं है।

वैज्ञानिकों के संसार में जीवन की जिन सूक्ष्मतम इकाइयों का पता चल पाया है, उनमें से 'डायटम' सबसे छोटा होता है। किंतु इसमें भ्रमात्मक प्रक्रिया है। 'डायटम' को कुछ वैज्ञानिक जीवाणु मानते हैं और कुछ उसे वनस्पति जगत का सबसे छोटा कोश मानते हैं। डायटम का अर्थ है—'दो परमाणुओं की शक्ति वाला।' यों यह वनस्पति वर्ग में आते हैं। पर इसमें पेड़-पौधों जैसा प्रत्यक्ष लक्षण

एक भी दीख नहीं पड़ता। इनका आकार इंच के पचासवें भाग से लेकर छह हजारवें भाग तक होता है। वे सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता से ही देखे जा सकते हैं।

इसके बाद सबसे सूक्ष्म इकाई विषाणु (वायरस) है। यह इतना छोटा होता है कि अब तक खोजे गए लगभग ३०० वायरसों में से पोलियो वायरस के १०००००००००००००००० कण केवल एक छोटी सी पिंगपौंग की गेंद में आ जाएँगे। उनकी सक्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि हैजा, पोलियो, इन्फ्लुएँजा, एनसेफेलाइटिस जैसी घातक बीमारियों को कुछ ही समय में स्वयं को कई गुना बढ़ाकर पैदा कर देते हैं और कई बार महामारी के रूप में भी प्रकट होकर अनेकों को मृत्यु की गोद में सुला देते हैं।

जीवन की अगली सूक्ष्मतम इकाई को जीवाणु कहते हैं। जीवाणु (वैक्टीरिया) इतने छोटे होते हैं कि एक इंच की लाइन में उन्हें क्रमशः बिठाया जाए तो उनकी संख्या कोई १०,००० बड़े आराम से बैठ जाएगी बाल की चौड़ाई में 'काकस' नाम के जीवाणु ७५ की संख्या में मजे में बैठ सकते हैं। इतनी सूक्ष्म अवस्था में जीवन का होना भारतीय तत्त्वदर्शन के '**अणोरणीयान महतो महीयान**' यह आत्मा अणु से भी छोटी और विराट से भी विराट है, सिद्धांत की पुष्टि करता है। किसी भी द्रव माध्यम के एक घन सेंटीमीटर में लगभग एक करोड़ जीवाणु आराम से रह लेते हैं।

विषाणु तो सबसे सूक्ष्म और प्रभावी सत्ता है। एक इंच में ये १,४१,००० आसानी से बैठ सकते हैं अर्थात यदि वह आदमी के बराबर हों और यह माना जाए कि उनमें से प्रत्येक को १ वर्ग फुट ही जगह चाहिए तो २६ मील सड़क की आवश्यकता होगी। सूक्ष्मता का परिचय देता हुआ ऐसा एक और अद्‌भुत तथ्य यह है कि

सामान्यत: बीस अरब सूक्ष्म जीवियों का वजन एक खस के दाने के बराबर होता है।

सूक्ष्म जीवियों का यह विराट रूप देखकर यह चिंतन सहज ही उभरता है कि यदि आत्मचेतना भी इतनी सूक्ष्म की जा सके तो वह एक परमाणु में ही संपूर्ण विश्व-ब्रह्मांड को देख सकती है। भारतीय योग दर्शन और चित्त-निरोध का यही उद्देश्य है कि मनुष्य अपने मन की सूक्ष्मता में बैठकर विराट ब्रह्मांड का दिग्दर्शन करे तभी विश्व के यथार्थ को समझा जा सकता है। जीवाणुओं की परीक्षा और उन पर प्रयोग ऐसी ही स्थिति में बन पड़ता है, जब उन्हें माइक्रोस्कोप द्वारा कई हजार और लाख गुना बढ़ाकर देखते हैं। अन्यथा उनके अस्तित्व का ही पता न चलता। सूक्ष्मता का दर्शन मनुष्य भी उसी प्रकार आत्मा के विकास के द्वारा ही कर सकता है।

प्रकृति की इस सूक्ष्म सत्ता का खेल निराला है। जीवाणुओं की लाखों किस्में हैं और हजारों तरह के आकार। आड़े-टेढ़े, कूबड़े, षटकोण, लंबवत विलक्षण शिवजी की बारात। कोई फैले रहते हैं, कोई गुच्छों में समुदाय बनाकर, कोई विष पैदा करते हैं और कोई मनुष्य जाति के हित के काम भी करते हैं। 'काकस', 'डिफ्थीरिया' 'स्फरोचेट्स' नामक जीवाणु जहाँ उपदंश, फफोले, मवाद पैदा कर देते हैं; वहाँ वे जीवाणु भी हैं जो दूध को दही में बदलकर और भी सुपाच्य बना देते हैं।

जो अच्छे प्रकार के जीवाणु होते हैं उन्हें काम में लाया जाता है। अच्छे मनुष्यों की तरह सम्मान दिया जाता है, जबकि बुरे और विषैले जीवाणुओं को मारने के लिए संसार भर में इतनी दवाएँ बनी हैं, जितने खराब मनुष्यों के लिए दंड विधान। कहीं अपराधियों को जेल दी जाती है, कहीं काला पानी, कहीं उनका खाना बंद कर दिया जाता है, कहीं सामाजिक संपर्क। उसी तरह औषधियों के द्वारा

खराब जीवाणुओं को भी नष्ट करके मारा जाता है। दंड का यह विधान यदि कठोरतापूर्वक न चलाया जाए तो मनुष्य-जाति अपना अस्तित्व ही खो बैठेगी।

इनकी वृद्धि का क्रम भी कुछ ऐसा ही होता है। पूर्णता पर आकर भी इनका वृद्धिक्रम रुकता नहीं। एक जीवाणु बढ़कर जब पूर्ण हो जाता है, तब उसी में से कोंपल फूटती हैं। नाभिक (न्यूक्लियस) थोड़ी देर में बँट जाता है और एक नए जीवाणु का रूप ले लेता है। जन्म से थोड़ी देर बाद ही वह भी जन्मदर बढ़ाना प्रारंभ कर देता है। इस प्रकार पिता और पुत्र दोनों बच्चे पैदा करते चले जाते हैं। १ से २, २ से ४, ४ से ८ और ८ से १६, इस क्रम में बढ़ते हुए एक सप्ताह में खमीर का जीवाणु १६८ पीढ़ी तैयार कर लेता है। उनमें से लाखों जीवाणु तो एक घंटे में ही पैदा हुए होते हैं।

प्रजनन पर नियंत्रण होना ही चाहिए। यदि मनुष्य इतना विवेक नहीं रख सकता तो वह भी उन जीवाणुओं की ही तरह समझा जाएगा, जो केवल १५ मिनट बाद एक नया बच्चा पैदा कर देते हैं। २४ घंटों में इनकी ९६ पीढ़ियाँ जन्म ले लेती हैं, मनुष्य को इतनी पीढ़ियों के लिए कम से कम दो हजार वर्ष चाहिए। २४ घंटे की इस अवधि में कुल उत्पन्न संतानों की संख्या २९६ (अर्थात दो-दो को ९६ बार गुणा किया जाए) होगी। अक्षरों में लिखने में यह संख्या थोड़ी समझ में आ रही होगी, पर यदि विधिवत गुणा करके देखा जाए, तो यह संख्या २८१३७४९८००४०५६ × २८१३७४९८००४०५६ होगी। आप अनुमान नहीं कर सकते; यह तो एक जीवाणु की एक दिन की पैदाइश है। यही कारण है कि वैज्ञानिक इस बढ़ती पैदावार से सतत सावधान रहते हैं एवं हानिकारक-घातक, जीवाणु-विषाणुओं को प्रयोगशाला से इधर-उधर नहीं होने देते। लेकिन सभी जीवाणु हानिकारक नहीं होते। यह तो एक सौभाग्य है कि जीवाणु बहुत

छोटे हैं, इसलिए उनके सर्वत्र भरे होने से भी हमारे सब काम चलते रहते हैं। पर यह नितांत संभव है कि हमारी प्रत्येक सांस के साथ लाखों जीवाणु शरीर में आते-जाते रहते हों। प्रकृति की इस विलक्षणता से मनुष्य की रक्षा भगवान ही करता है अन्यथा यदि विषैले जीवाणुओं, विषाणुओं की संख्या बढ़ जाती, तो पृथ्वी पर रहने वाले सभी मनुष्यों को उसी तरह नजरबंद रहना पड़ता, जिस तरह अंतर्ग्रही यात्रा से लौटे किसी एस्ट्रानॉट को सुरक्षित रखने के लिए व संभावित ब्रह्मांडीय वायरस के पृथ्वी पर फैलने से उसे बचाए रखने के लिए छह सप्ताह तक क्वारेंटाइन में रहना होता है।

जीवाणुओं की जनसंख्या वृद्धि जहाँ चिंता का विषय है, वहाँ उनका पेटू होना जरूरत से अधिक खाना हितकारी ही माना जाता है। जीवाणु एक घंटे में अपने भार से दो गुना अधिक खा डालता है। जब तक भोजन मिलता रहता है, वह खाता ही रहता है। गंधक, लोहा, अंडे, खून, सड़े-गले पत्ते, लकड़ी और मरे हुए जानवर ही इनका आहार है। इस दृष्टि से जीवाणु बहुत कुछ मनुष्य का हित भी करते रहते हैं। जीवाणु न होते तो पृथ्वी पर गंदगी इतनी अधिक बढ़ जाती कि मनुष्य का जीवित रहना कठिन हो जाता।

कुछ जहरीले जीवाणु कार्बन मोनो आक्साइड पर जीवित रहते हैं। यह एक जहरीली गैस है और मनुष्य के लिए अहितकारक। भगवान शिव की तरह विष से मानव-जाति की सुरक्षा का एक महान परोपकारी कार्य जीवाणु संपन्न करते हैं।

दूध में पड़ा वैक्टीरिया उसे दही बना देता है। देवत्व और श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति समाज को भी उसी तरह सुंदर बना देती है, जैसे दूध की अपेक्षा दही अधिक सुपाच्य हो जाता है। अपने जीवन में छोटी से छोटी वस्तु का उपयोग है।

इसी प्रकार शरीर में रहने वाले अन्य कई हितकारी जीवाणु जिन्हें 'कमेन्सल्स' कहा जाता है, अनेकों चयापचय गतिविधियों में भाग लेते व जीवन बनाए रहने हेतु महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते देखे जाते हैं। विटामिन बी-१ आँतों के जीवाणुओं द्वारा ही बनाया जाता है। पाचनशक्ति के लिए आँतों का फ्लोरा बने रहना बड़ा जरूरी है। मुँह से लेकर श्वास व पाचन नली तक की सफाई का काम कई जीवाणु बड़े आराम से वहीं करते रहते हैं। इनके सहयोग को नकारा नहीं जा सकता।

जिसे हम नगण्य समझते हैं, उस मिट्टी में भी फफूँदी (फँगाई) एक्टीनो, माइसिटीज तथा दूसरे कई महत्त्वपूर्ण जीवाणु (वैक्टीरिया) पाए जाते हैं। ये नंगी आँखों से दिखाई नहीं देते, उन्हें शक्तिशाली खुर्दबीनों माइक्रोस्कोप से ही देखा जा सकता है। पर उनकी इस लघुता में वह महानता छिपी है, जो सारे समाज के हितों की रक्षा करती है। यदि यह जीवाणु न होते तो यह सारी पृथ्वी सात दिन के अंदर पूरी तरह मल से आच्छादित हो जाती और तब मनुष्य का जीवन रहना भी असंभव हो जाता।

सूक्ष्मजीवी प्रत्येक जगह पर मिलते हैं। यहाँ तक कि ये ऐसे स्थानों पर भी पाए जाते हैं, जहाँ जीवन की कोई संभावना नहीं मानी गई थी। पृथ्वी के वायुमंडल की ऊपरी तह में, दक्षिणी ध्रुवों की बरफ में, गर्म सोतों के खौलते प्रवाह में, नाभकीय रिएक्टरों की शीतलन प्रणालियों में भी इन्हें पाया गया है।

'मृतसागर से साफ पानी तक, स्तनपायियों की आँतों से लोहे के जमीनदोज नलों की सतहों तक इनका बोलबाला है। प्रतिदिन अनेक सूक्ष्मजीवी हमारे शरीर के भीतर नाक और मुँह के रास्ते से घुसते हैं। वे हमारी त्वचा पर भी विहार करते हैं।

इन सूक्ष्म जीवियों की असंख्य जातियाँ हैं। कुछ सूक्ष्मजीवी अम्लीय माध्यम में रहते हैं तो कुछ क्षारीय। कुछ ऊँचे तापक्रम पर, तो कुछ नीचे तापक्रम पर। कुछ हवा के बिना नहीं जी सकते, तो कुछ हवा में ही नहीं जी सकते, बिना हवा के मजे में रह लेते हैं। इन्हें क्रमशः एरोबिक एवं एनेरोबिक कहते हैं।

कुछ जाति के वैक्टीरिया ऐसे पाए गए हैं जो खौलते पानी के ९२ डिगरी सेंटीग्रेड तापमान में भी मजे से जीवित रहते हैं। अमेरिका के येलोस्टोन नेशनल पार्क में स्थित गर्म जल के झरने प्रायः इसी तापमान के हैं और उनमें जीवित वैक्टीरिया पाए गए हैं। इन गरम झरनों अथवा कुंडों में एक प्रकार की काई की मोटी परत जमी रहती है जिसे हिंदी में शैवाल कहा जाता है। अंगरेजी में उसका नाम एल्गी है। इसमें जीवन रहता है। आमतौर से वह ७५ डिगरी सेंटीग्रेड तक गरम जल में मजे का निर्वाह करती है। वैक्टीरिया उसी के सहारे पलते हैं। हर परिस्थिति के अनुसार ढलने की उनमें अद्‌भुत क्षमता होती है। ये अपने ऊपर कवच बनाकर हर प्रतिकूल परिस्थिति में रह लेते हैं। इन्सीनरेशन (कृत्रिम दहन) एवं स्टरीलाइजेशन के तमाम उपचार अपनाने के बाद भी कई जीवाणु नष्ट नहीं होते।

जीवाणु आत्मा के अनेक रहस्यों की सत्यता का प्रतिपादन करते हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है—

**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**
**न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥**

*—गीता २/२३*

हे अर्जुन! यह आत्मा बड़ी विलक्षण है, न तो इसे शस्त्र छेद सकते हैं और न ही अग्नि इसे जला सकती है, जल गीला नहीं कर सकता और न ही हवा इसे सुखा सकती है।

मानव शरीर की जटिलता से युक्त अत्यंत सूक्ष्म जीवाणु के अध्ययन से ये सारी बातें सत्य पाई गईं। कई जीवाणु जिन्हें गीले स्थान में ही रहने का अभ्यास था, उन्हें सूखे में लाया गया, तब भी उनके जीवन को कोई संकट उपस्थित नहीं हुआ। वे बीस वर्ष तक बराबर आर्द्रता की प्रतीक्षा करते रहे। इसी प्रकार उन पर तेज से तेज सूर्य की धूप का भी प्रभाव नहीं होता। ठंढे से ठंढे स्थान में भी जीवाणु मरते नहीं और उन्हें कुछ खाने को न मिले, तो भी वे अपना जीवन धारण किए रहते हैं।

सूक्ष्म जीवियों की दृष्टि में 'यीस्ट' (खमीर) का उदाहरण पौधों की दुनिया में और भी विलक्षण है। पौधों में यह सबसे छोटा है। इसकी संरचना अन्य वानस्पतिक जीवकोशों जैसी ही होती है। वह अंडाकार भी होता है और गोलाकार भी। आकार में वह एक इंच का पच्चीसवाँ भाग और वजन में एक ग्राम का दस अरबवाँ हिस्सा। इसे एक भिन्न वर्ग का पौधा मानना पड़ेगा, फफूँद की तरह पराश्रयी-परावलंबी। इसके अतिरिक्त खमीर एककोशीय है, जबकि हर पौधे की रचना अनेक कोशों से मिलकर हुई होती है।

शराब बनाने में और रोटियों का फुलाव पैदा करने के लिए खमीर का उपयोग सबसे अधिक होता है। जौ, चावल, अंगूर, महुआ, शीरा आदि कितने ही पदार्थों को सड़ाकर उनमें खमीर पैदा किया जाता है और फिर उसे भट्ठी द्वारा अरक बनाकर शराब तैयार कर ली जाती है। आटे में इसका थोड़ा अंश मिल जाने से उसमें यह तत्त्व फैल जाता है। डबल रोटी, बिस्कुट, जलेबी, गोलगप्पे आदि में जो फुलाव दीखता है, वह खमीरजन्य ही होता है। फरमेण्टेशन प्रक्रिया द्वारा कैसे परिर्द्धन-परिवर्तन किया जा सकता है, उसकी यह एक झाँकी भर है। सूक्ष्म तत्त्व का फैलाव विस्तार असीम तक हो सकता है; यह निष्कर्ष इससे निकलता है।

अल्ट्रा वायलेट फोटोग्राफी से भी वैज्ञानिकों को ऐसे प्राणियों के अस्तित्व का पता चला है जो हमारी समझ, परख और प्रामाणिकता के लिए काम में लाई जाने वाली सभी कसौटियों से ऊपर हैं। इन प्राणियों को 'प्रेत मानव' अथवा 'प्रेत प्राणी' कहा जाए तो कुछ अत्युक्ति न होगी। अब हमारे परिवार में यह अदृश्य प्राणधारी भी सम्मिलित होने आ रहे हैं। सूक्ष्म जीवाणु की तरह उनकी हरकतें और हलचलें भी अपने अनुभव की सीमा में आ जाएँगी।

हर्बर्ट गोल्डस्टीन ने अपने शोध निबंध 'प्रोपेगेशन आफ शार्ट रेडियो वेव्स' में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वायुमंडल में संव्याप्त अपवर्तनांक प्रवणता के परदे से पीछे अदृश्य प्राणियों की दुनिया है। वह दुनिया हमारे साथ जुड़ी हुई है और दृश्यमान सहचरों से कम प्रभावित नहीं करती। वर्तमान सूक्ष्मदर्शी साधन अपर्याप्त हैं तो भी हमें निराश न होकर ऐसे साधक विकसित करने चाहिए, जो इस अति महत्त्वपूर्ण अदृश्य संसार के साथ हमारी अनुभव.चेतना का संबंध जोड़ सकें।

यह तो एक वैज्ञानिक चिंतन हुआ। पर इतना निश्चित है कि प्रकृति या परमेश्वर को समझने के लिए बाह्य उपकरण काम नहीं दे सकते। उनकी स्पष्ट और सही जानकारी तभी संभव है, जब हम उन्हें अपनी मानसिक चेतना, ज्ञान या अनुभूति की अत्यंत सूक्ष्म इकाई से तोलें। अभी तो वैज्ञानिकों को सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता मिल रही है पर संभव है कि आगे चलकर उन्हें भी 'ध्यान प्रणाली' अपनानी पड़े। प्रकृति के सूक्ष्मतम रहस्यों का पता वस्तुतः चेतना की सूक्ष्म अवस्था तक पहुँचकर ही चल सकता है।

---

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ० प्र०)